मथुरा संग्रहालय परिचय

रमेश चन्द्र शर्मा

मथुरा संग्रहालय परिचय

रमेश चन्द्र शर्मा
संग्रहालयाध्यक्ष

राजकीय संग्रहालय,
मथुरा

प्रथम संस्करण– 1972

द्वितीय संस्करण– 2011

मूल्य– पचास रु. मात्र

डॉ. ए.के. पाण्डेय, निदेशक, राजकीय संग्रहालय, मथुरा द्वारा प्रकाशित
एवं प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ द्वारा मुद्रित

श्रद्धेय डा. वासुदेव शरण अग्रवाल
की पुण्य स्मृति को
सादर समर्पित

विषय सूची

दो शब्द

मथुरा का स्थान इतिहास में अपनी विशिष्ट कला एवं संस्कृति के विख्यात हैं ! मथुरा सभी धर्मों का केन्द्र बिन्दु रहा है। भागवत धर्म का मुख्य केन्द्र मथुरा रहा। मौर्य, कुषाण एवं गुप्त काल में कला के अद्भुत नमूनों का संग्रह मथुरा संग्रहालय में है। संग्रहालय की सामान्य परिचय पुस्तिका का लेखन पूर्व निदेशक डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा ने वर्ष 1972 में किया, जिसे कला प्रेमियों ने अत्याधिक सराहा। यह पुस्तिका अब समाप्त हो गई है। इसका संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत हैं।

होलिकात्सव

मार्च, 2011

डॉ. अजय कुमार पाण्डेय
निदेशक
राजकीय संग्रहालय
मथुरा

भूमिका

भारत के धार्मिक तथा राजनीतिक इतिहास में मथुरा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आद्य–ऐतिहासिक युग से लेकर मध्यकाल तक मथुरा में भौतिक सभ्यता का विकास अनेक रूपों में हुआ। साथ ही वैदिक, जैन तथा बौद्ध धर्मों के केन्द्र–रूप में यह नगर प्रतिष्ठित हुआ। वैदिक धर्म की प्रमुख शाखा भागवत धर्म का उद्भव और विकास मथुरा में सम्पन्न हुआ। भागवत या सात्वत धर्म के मुख्य केन्द्र श्रीकृष्ण हुए, जिनका जन्म मथुरा में हुआ। भगवान् कृष्ण की बाल–लीलाएं मथुरा और उसके आस–पास ब्रज क्षेत्र (प्राचीन शूरसेन जनपद) में हुई; जिनकी स्मृति विविध रूपों में आज भी विद्यमान हैं।

मौर्य काल के पश्चात् मथुरा में अनेक राजवंशों ने अपने राजनैतिक केन्द्र स्थापित किये। शुंग–मित्र, शक–क्षत्रप , दत्त, कुषाण, नाग तथा गुप्त वंशो ने क्रमशः ई.पू. दूसरी शती से लेकर पांचवी शती तक मथुरा जनपद पर शासन किया। लगभग सात शताब्दियों के इस दीर्घ समय में मथुरा में वास्तु और मूर्तिकला का अप्रतिम उन्मेष हुआ।

कुषाणों के शासन में मथुरा को भारत का प्रमुख कला केन्द्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस काल में मथुरा के चित्तीदार लाल पत्थर की बनी हुई प्रतिमाएं भारत के अनेक भागों में भेजी जाती थीं। मथुरा का स्थान उस समय प्रायः वैसा ही था जैसा कि वर्तमान समय में जयपुर का है, जहां की बनी हुई संगमरमर की देव–प्रतिमाएं देश के विभिन्न भागों में पहुंचती हैं। मथुरा की कुषाणकालीन कला में मानव–शरीर का चारुत्व–तत्व मूर्तिमान हो उठा। इस काल में धर्म को कल्याणप्रद, आकर्षक लौकिक रूप प्रदान करना मथुरा के शिल्पियों की महती देन है।

गुप्तकला में बाह्य सौंदर्य के साथ आन्तरिक आनन्द का समन्वय मथुरा कला में देखने को मिलता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने मथुरा की ओर विशेष ध्यान दिया। गुप्त युग में उत्तर तथा मध्य भारत में अनेक कला–केन्द्र विकसित हुए। उनकी मूर्ति कला पर मथुरा शैली का प्रभाव परिलक्षित हैं अहिच्छत्रा, सारनाथ, देवगढ़, विदिशा, एरण, नचना, भूमरा आदि स्थलों की गुप्तकालीन कला का अध्ययन इस दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। मध्य भारत में विदिशा का स्थान विशेष उल्लेखनीय है। मथुरा की तरह वहां भी भागवत धर्म का प्रचुर विकास हुआ। इसका मुख्य श्रेय गुप्त सम्राट, चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही दिया जा सकता है।

उत्तर–पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिण भारत में भी मथुरा की मनोरंजक कला शैली आदृत हुई। वस्तुतः वैदिक, जैन तथा बौद्ध धर्मों से संबंधित मूर्ति–विज्ञान की अनेक विधाओं का प्रारम्भ मथुरा में हुआ था। इनका उन्नयन क्रमशः भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। गुर्जर प्रतिहार, गहड़वाल तथा पाल–वंशी शासकों ने गुप्तकालीन कला के अनेक तत्वों को जारी रखा। ये तत्व भारतीय सीमाओं को लांघकर दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों में भी व्याप्त हुए।

मथुरा कला न केवल राजनैतिक एवं धार्मिक इतिहास की जानकारी के लिये सहायक है, अपितु शुद्ध

कलात्मक दृष्टि से भी उसका विशेष महत्व है। मथुरा के कलाकारों ने सौंदर्य तथा श्रृंगार के उदात्त तत्वों को मूर्त रूप देकर उन्हें शाश्वत बनाया। रमणीयता के जितने मनोहारी रूप मथुरा कला में उपलब्ध हैं उतने भारत के किसी अन्य कला केन्द्र में देखने को नहीं मिलते।

मथुरा के राजकीय संग्रहालय में मौर्यकाल से लेकर बारहवीं शती तक की मूर्तिकला तथा वास्तुकला के बहुसंख्यक कलावशेष प्रदर्शित हैं। मौर्यकाल के पूर्व–आद्य–ऐतिहासिक युग के कतिपय अवशेष भी, जो मथुरा, सोंख आदि स्थानों के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं, संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें विविध ताम्र–उपकरण, मृत्पात्र आदि हैं। पूर्व निदेशक, श्री रमेश चन्द्र शर्मा द्वारा लिखित प्रस्तुत 'परिचय–पुस्तक' में संग्रहालय की विभिन्न वीथियों में प्रदर्शित सामग्री का रोचक विवरण दिया गया है। यह पुस्तक दर्शकों के लिये निस्संदेह अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

महाशिवरात्रि

१३.२.१६७२

कृष्ण दत्त बाजपेयी
टैगोर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास
संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग
सागर विश्वविद्यालय

लेखक का निवेदन

दीर्घकाल से राजकीय संग्रहालय मथुरा की कोई निर्देशिका उपलब्ध न होने के कारण दर्शकों को संग्रहालय का चिरविश्रुत संकलन समझने में असुविधा का अनुभव होता था। उस अभाव की पूर्ति के हेतु उत्तर प्रदेश शासन की प्राक्कलन समिति ने एक सचित्र डायरेक्टरी प्रकाशित करने का कई वर्ष पूर्व सुझाव दिया था किन्तु इस कार्य को सम्पन्न करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां सामने आई। विशेष रूप से वीथिकाओं को एक बार पुनः अन्तिम रूप से कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित कर देना पड़ा, ताकि निर्देशिका के पाठकों को संग्रहालय देखते समय विषय का सरलता से बोध होता चला जाय। सौभाग्य से यह सब कार्य अब सम्पन्न कर लिया गया है और पुस्तक प्रस्तुत है।

'मथुरा संग्रहालय परिचय' अंग्रेजी गाइड बुक का अनुवाद मात्र न होकर स्वतंत्र पुस्तक बन गई है। पिछले वर्ष कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण मूर्तियों की प्राप्ति के फलस्वरुप संग्रहालय के संकलन में अच्छी श्रीवृद्धि हुई है और उनका उल्लेख पुस्तक में यथास्थान कर दिया गया है। हिन्दी पाठकगण पौराणिक आख्यानों से परिचित होंगे इस दृष्टि से कुछ कथा प्रसंगो को छोड़ दिया गया है किन्तु कला की शैलीगत विशेषताएं तथा अन्य विवरण स्वयं में पूर्ण है। अंग्रेजी संस्करण के लिए राष्ट्रीय संग्रहालय के निदेशक और भारतीय संस्कृति के मूर्द्धन्य विद्वान श्री सी. शिवराम मूर्ति जी ने आमुख लिखने की कृपा की है जिसके लिये उनका हृदय से आभारी हूं।

बर्लिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा सोंख उत्खनन के निदेशक डा. हरबर्ट हर्टल ने जो उपयोगी सुझाव अंग्रेजी संस्करण के निमित्त दिये थे उनका हिन्दी संस्करण में भी उपयोग हुआ है, अतः वह भी धन्यवाद के पात्र हैं। उन्होंने सोंख उत्खनन से मिली कुछ दुर्लभ कलाकृतियों के वीथिका में प्रदर्शित करने की सहमति प्रदान की है। हिन्दी की पाण्डुलिपि तथा टाइप प्रति तैयार करने में संग्रहालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री शिव विलाश वाजपेयी ने अच्छी सहायता की है। प्रेस प्रति को संशोधित करने, मुद्रण के समय निरीक्षण करने और यथास्थान यथाअवसर अच्छे सुझाव देकर सहायक संग्रहालयाध्यक्ष श्री शिव दयाल त्रिवेदी ने भी सराहनीय कार्य सम्पन्न किया है। इसके साथ संग्रहालय के अन्य सहयोगियों का परिश्रम भी इसके प्रकाशन में सहायक हुआ है। संस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश के निदेशक, उप निदेशक तथा निदेशालय के बन्धुओं ने भी पुस्तक को सुरुचिपूर्ण मुद्रित कराने के लिए यथासंभव अनेक प्रयास किये, अतः वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। मानचित्रों के लिये श्री के.सी.सक्सेना सह नगर नियोजक के आभारी हैं। यह पुस्तक मथुरा संग्रहालय के भूतपूर्व यशस्वी संग्रहालयाध्यक्ष, भारतीय इतिहास, कला एवं संस्कृति के प्रख्यात विद्वान तथा मेरे गुरुवर स्व. डा. वासुदेव शरण अग्रवाल जी की स्मृति में सादर समर्पित हैं।

डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा

MATHURA CITY
SCALE 1" TO 1 MILE
N
TO DELHI
DAHRWA
KINARAI
JAISINGH PUR
GOKARNESHWAR MOUND
AMBRISH MOUND
RADIO STATON
SARAI AZMA BAD
GOVIND PUR
TAYAB PUR
YAMUNA RIVER
ABDUL NABI PUR
LOHBAN
CHAURASI MOUND
KRISHN JANM BHUMI
VISHRAM GHAT
DWARKA DISH TEMPLE
HOLI GATE
BHUTESHWAR
MUSEUM
SAPTRISHI MOUND
KANKALI MOUND
BUS STAND
GOPAL PUR
CANTT RLY. STATION
JN. RLY STATION
RAWEL
PALI KHERA
OLD MUSEUM
CHAUBARA MOUND
MADHO PUR
NAGALASHIV
MAHOLI
MAI MIRZA PUR
NARHOLI
BIRJAPUR
NAGLAJAND
TARTURA
DHANNPUR
NAWADA
AURANGA BAD
GOKUL
AZAM PUR
HANUMAN GARHI
MOHAN PUR
RONCHHI
TO AGRA

(च)

MUSEUM GALLERY PLAN

मथुरा से संबंधित मुख्य तिथिक्रम

ताम्र अवशेष	ल. १००० ई. पू. से पहले?	(कनिंघम ए.एस.आई.आर. भाग ३, १८७१–७२ पू. १३)
भूरे चित्रित पात्र	ल. १००० ई. पू. से ५०० ई.पू.	(देखिये संदर्भ १६)
काले व लाल बर्तन	ल. १००० ई. पू. से ५०० ई.पू.	(देखिये संदर्भ १६)

शासक

बुद्ध	ल. ५६३–४८३ ई.पू.	अवन्ति पुत्र
महावीर	ल. ५६६–५२७ ई.पू.	उदितोदय या भीदाम?
मौर्य काल	ल. ३२५–१८४ ई.पू.	चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक
शुंग काल	ल. ८४–७२ ई.पू.	पुष्यमित्र, अग्निमित्र
शक क्षत्रप	ल. १००–५७ ई.पू.	राजवुल, शोडास, चष्टन, रुद्रदामन
विविध	ल. ५७ ई.पू.	उत्तर शुंग वंश(गोमित्र, विष्णु गुप्त) तथा दत्त वंश (पुरुष दत्त से भवदत्त तक)
कुषाण काल	ल. १ से १७६ ई.पू.	कुजुल कड्फिसस्, विम कड्फिसस्, कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क, वासुदेव
नाग शासन	ल. २०० से ३३५ ई.पू.	वीरसेन, गणपति नाग, कीर्तिसेन, नागसेन आदि
गुप्त काल	ल. ३३५ से ६०० ई.पू.	समुद्रगुप्त, रामगुप्त (?) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमार गुप्त, स्कन्द गुप्त
पूर्व मध्य काल	ल. ६०० से ६०० ई.	हर्ष वर्धन, यशोवर्मन, प्रतिहार (नागभट्ट मिहिरभोज, महेन्द्रपाल......)
उत्तर मध्य काल	ल. ६०० से १२०० ई.	गहड़वाल गोविन्द चन्द्र, विजय चन्द्र, जयचन्द्र। तदनन्तर मुस्लिम शासन...

सामान्य परिचय

मथुरा का धार्मिक महत्वः

दिल्ली से १४५ कि.मी. दक्षिण–पूर्ण और आगरा से ५८ कि.मी. उत्तर–पश्चिम की ओर यमुना के दक्षिण तट पर बसी मथुरा नगरी का भारत के सांस्कृतिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक परम्पराओं के अनुसार मधु नामक दैत्य ने इसे बसाया और कालान्तर में उसके पुत्र लवणासुर को जीतकर श्रीराम के कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न ने नगर का पुनरुद्धार तथा विकास किया[1]। कुछ मान्यताएं ऐसी भी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि यहां के वनों में मधु अर्थात शहद अधिक मात्रा में उपलब्ध होने के कारण इस क्षेत्र का नाम मधुवन या मधुरा पड़ा जो बाद में मथुरा कहलाने लगा[2]। श्रीकृष्ण के जन्म से संबंधित होने के कारण इसे अनन्त कीर्ति प्राप्त हुई। शूरसेन जनपद की यह राजधानी महाभारत युग में राजनीति का प्रमुख केन्द्र थी।

बौद्ध परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध भी यहां पधारे थे। यद्यपि कुछ कारणवश वह अपनी यात्रा से संतुष्ट न हो सके तथापि अपने निर्वाण से कुछ पूर्व यहां पुनः आए और उन्होंने इस नगर के भावी स्वरूप के संबंध में अनेक भविष्यवाणियां की[3]। यहां के तत्कालीन शासक अवन्तिपुत्र ने उनका सत्कार किया। बुद्ध जी के एक प्रमुख शिष्य महाकात्यायन से इस राजा ने गुंदवन में धार्मिक वार्तालाप किया। एक अन्य शिष्य महाकश्यप की पत्नी भद्रा कपिलानी मथुरा निवासिनी ही थी[4]। बौद्ध धर्म के इतिहास में मथुरा की यश–पताका फहराने वाले थे आचार्य उपगुप्त जिन्हें अशोक ने धार्मिक प्रवचनों के लिये पाटिलपुत्र में आमंत्रित किया। सम्राट ने इनके परामर्श से धर्म विजय की योजना बनाई और अनेक बौद्ध तीर्थों की यात्रा कर वहाँ स्तूप, मठ, बिहार आदि बनाए। मथुरा में भी कुछ ऐसे स्थान बने जिनका उल्लेख चीनी यात्रियों ने किया है। आचार्य उपगुप्त की विद्वता के फलस्वरूप मथुरा सर्वास्तिवादिन बौद्ध सम्प्रदाय का गढ़ बना गया।

जैन धर्म का भी मथुरा से घनिष्ठ संबंध रहा है[5]। सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ की यह जन्मस्थली मानी जाती है। उनकी स्मृति में एक विशाल स्तूप का निर्माण हुआ जिसे मूर्ति लेख में देवनिर्मित बौद्ध स्तूप कहा है। कंकाली टीले से प्राप्त यह विशाल कलाराशि अब लखनऊ संग्रहालय में है। २२वें तीर्थकर नेमिनाथ का जन्म ब्रजमण्डल में ही शौरिपुर नामक स्थान में हुआ जिसे विद्वान आगरा जिले में बटेश्वर बताते हैं[6]। जैन मान्यता यह है कि नेमिनाथ जी श्रीकृष्ण के ताऊ समुद्र विजय के पुत्र थे और अहिंसा का उपदेश नेमिनाथ जी ने ही श्रीकृष्ण को दिया। भगवान् महावीर ने भी यहाँ बिहार किया था। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को यहीं निर्वाण लाभ हुआ। इस प्रकार प्राचीन काल से ही ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन धर्मों के लिये मथुरा प्रमुख आकर्षण का केन्द्र रहा है।

राजनैतिक इतिहासः

विवादास्पद पौराणिक परम्पराओं को भुलाकर यदि हम मथुरा का शुद्ध ऐतिहासिक परिचय प्राप्त करना चाहें तो ज्ञात होता हैं कि ५वीं शती ई.पू. में

शूरसेन राज्य 'षोडश महाजनपदों' में से एक था[७]। समकालीन व्याकरणशास्त्र अष्टाध्यायी के प्रणेता पाणिनी ने इस स्थान का और यहाँ के अन्धक वृष्णि वंशो का भी उल्लेख किया है[८]। कौटिल्य ने अपने अर्थ–शास्त्र में वृष्णियों को गणसंघ माना है और वासुदेव (कृष्ण) को अंधक वृष्णियों का संघ मुख्य बताया है। चौथी शती ई.पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आए यूनानी दूत मेगस्थनीज ने मथुरा को शूरसेनों का मुख्य स्थान बताते हुए स्पष्ट किया है कि यहाँ श्रीकृष्ण की उपासना होती थी किन्तु मौर्य युग में यह प्रदेश मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था।

शुंगकाल अर्थात् दूसरी–पहली शताब्दी ई.पू. में ब्रज प्रदेश को हम समृद्धि से परिपूर्ण व सम्पन्न क्षेत्र के रूप में देखते हैं। अष्टाध्यायी के व्याख्याकार पतंजलि ने लिखा है कि यहाँ के निवासी संतुष्ट तथा रूपवान थे[९]। साहित्य तथा सिक्कों की उपलब्धियों से प्रकाश पड़ता है कि शुंगकाल में कुछ यूनानी शासकों ने भारत के अन्य भागों के अतिरिक्त ब्रज पर भी आक्रमण किए और संभवतः यहीं से वे साकेत तथा पाटलिपुत्र तक पहुंचे। किन्तु अपने स्वयं के राज्यों में आन्तरिक विद्रोंहों के फलस्वरूप वे यहाँ नहीं रुके और प्रथम शताब्दी ई.पू. में हमें ब्रज प्रदेश में एक नई शक्ति का उदय होता दिखाई देता है, जिसका बीजारोपण शक–क्षत्रप राजबुल ने किया और उसके पुत्र महाक्षत्रप शोडास ने उसमें वृद्धि की। तत्पश्चात् कुछ समय के लिए यहाँ का इतिहास लुप्त है। पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त, कामदत्त, शेषदत्त और भवदत्त के सिक्कों से संकेत मिलता है कि क्षत्रप शासन के बाद दत्त वंश ने ब्रज प्रदेश पर अधिकार कर लिया[१०]।

प्रथम शती ई. के उत्तरार्द्ध में ब्रज में कुषाण–वंशी राजाओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया और मथुरा नगर उनके साम्राज्य का एक मुख्य केन्द्र बना। कनिष्क के शासन में यहाँ साहित्य और कला की अपूर्व वृद्धि हुई। वाशिष्क के समय भी इसका महत्व अक्षुण्ण रहा। हुविष्क व वासुदेव काल में तो यह उत्तर भारत के महानगर के रूप में परिणत हो गया। संभव है नगर की इस ख्याति के फलस्वरूप यहाँ के भूभाग का प्रचलित नाम शूरसेन गौण हो गया और इसे मथुरा कहने लगे[११]। कुषाणों के राज्यकाल की एक शती मथुरा के लिये स्वर्ण काल मानी जाती है। १७६ ई. में वासुदेव की मृत्यु के पश्चात यहाँ पुनः अंधकार का युग प्रारम्भ होता है। कुछ नाग राजाओं के नाम मिलतें है जो कुषाणों के समय और उनके बाद तक रहे। चौथी शती ई. के आरम्भ में उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ और मथुरा पुनः मगध साम्राज्य में विलीन हो गया। किन्तु यहाँ सांस्कृतिक क्रिया–कलाप चलते रहे। चीनी यात्री फाह्यान के यात्रा वर्णन से सूचना मिलती है कि उस समय यहाँ अनेक बौद्ध तथा जैन स्तूप, मठ, विहार और ब्राह्मण धर्म के देवालय थे[१२]।

गुप्त काल के अन्त में यहाँ हूणों के प्रचण्ड आक्रमण हुए और बहुत सा वैभव नष्ट हो गया। शनैः शनैः मथुरा का महत्व कम हो गया। छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक यहाँ का प्रशासन थानेश्वर अर्थात् कन्नौज से होता रहा जहाँ वर्द्धनों के उपरान्त प्रतिहार वंश ने सत्ता सम्हाली। मथुरा के इतिहास में यह युग शान्तिकाल था और कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी। ११वीं शती के आरम्भ में महमूद गजनवी ने भयंकर आक्रमण किया। मन्दिरों को तहस–नहस कर अपार धनराशि लूटी गई[१३]। थानेश्वर में प्रतिहारों के बाद गहड़वालों का राज्य हुआ और मथुरा उनके प्रभुत्व में बना रहा।

११९४ ई. में कुतुबुद्दीन ने जयचन्द को परास्त कर कन्नौज के हिन्दू राज्य का अन्त किया और मथुरा पर मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया। यहाँ के इतिहास में पन्द्रहवीं शताब्दी क

अन्तिम चरण और यातनाओं का युग था जब सिकन्दर लोदी ने न केवल मन्दिरों व मूर्तियों को तोड़ा और सम्पत्ति लूटी अपितु हिन्दुओं का नरसंहार भी किया[१४]। अकबर की सुलह कुल की नीति और उसके धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धान्तों ने ब्रज की निराश जनता में चेतना का संचार किया और १०० वर्ष तक साहित्य, कला व संगीत की यहाँ त्रिवेणी बहती रही। अनेक अच्छे मंदिरों का भी निर्माण हुआ। जहाँगीर व शाहजहाँ अन्य धर्मों के प्रति उदासीन थे किन्तु औरंगजेब की धर्मान्ध नीति ने मथुरा में पुनः विनाश लीला प्रारम्भ की। प्रमुख मन्दिर या तो नष्ट कर दिए गए अथवा इन्हें मस्जिदों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। सुन्दर देव प्रतिमाओं को तोड़ डाला गया। इस आतंक से क्षुब्ध होकर अनेक साधु व महात्मा देव मूर्तियों को लेकर हिन्दू राजाओं की शरण में चले गये। उसके अन्तिम काल में जाटों ने १७७० ई. तक मथुरा पर शासन किया और बाद में मराठाओं ने उन्हें हराया। इस बीच १७३६ में नादिर शाह और १७५७ ई. में अहमदशाह अब्दाली के बर्बर आक्रमण हुए। मराठाओं का प्रभुत्व लगभग ३३ वर्ष तक रहा और उन्होंने कुछ धार्मिक स्थानों के जीर्णोद्धार का प्रयास किया। १८०३ में उन्हें अंग्रेजों को सत्ता सौंपनी पड़ी जो भारत के स्वाधीन होने तक राज्य करते रहे। इस प्रकार हम मथुरा में संहार व सृजन का चक्र निरन्तर चलते देखते हैं। धर्मान्ध व क्रूर आक्रमणकारियों ने यदि यहा विनाश का ताण्डव किया तो धर्माचारियों के उपदेशामृत से प्रभावित हो अनेक राजाओं, धनिकों और नागरिकों ने यथासमय संस्कृति देवी का पुनः नूतन श्रृंगार किया। प्राचीन काल में भारत की सात मोक्षप्रदा नगरियों में गिनी जाने वाली मथुरा नगरी की आज भी भारत के प्रमुख तीर्थ स्थानों में गणना है।

पुरातात्विक महत्वः

मथुरा के प्राचीन वैभव का अनुमान ब्रज क्षेत्र से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों से लगता हैं। बहुत सी अभिलिखित मूर्तियाँ मिली हैं जिनसे देश के इतिहास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जैसा कि ऊपर संकेत दिया जा चुका है यहाँ भवन–निर्माण बहुत पहले ही आरम्भ हो गया था। कंकाली टीले से मिले एक मूर्ति अभिलेख (जे. २०, लखनऊ संग्रहालय) में उल्लेख है कि इस स्थान पर एक वोद्ध नामक स्तूप था जिसे देवनिर्मित कहते थे। इस मूर्ति का समय दूसरी शताब्दी ई. का आरम्भ है। विद्वानों का अनुमान है कि इसे देवनिर्मित लिखने का कारण होगा कि भवन के इतिहास को लोग भूल चुके थे। इस दृष्टि से वह स्तूप अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होता है। शुंग कालीन अवशेष तो इससे प्राप्त हुए ही हैं[१५]। परम्परा यह है कि अशोक ने भी कुछ स्तूप यहाँ बनाए जिन्हें चीनी यात्रियों फाहयान तथा ह्वेनसांग ने देखा था। ये स्तूप शारिपुत्र, राहुल, आनन्द, मौद्गलायन, उपालि, मैत्रायणीपुत्र पूर्ण और मजुश्री की स्मृति में बने थे[१६]। दुर्भाग्य से इनके अवशेष अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं। परखम से मिली विशालकाय यक्ष प्रतिमा इसका प्रमाण है कि तृतीय शताब्दी ई. पू. से मथुरा क्षेत्र में प्रस्तर मूर्तियों का निर्माण होने लगा था। मृण्मूर्तियाँ तथा सिक्के तो और भी प्राचीन हैं। किन्तु सबसे प्राचीन अवशेष हैं मिट्टी के बर्तन जिन्हें लगभग १००० ई.पू. का माना जा सकता है।

मोरा नामक स्थान से प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ई.पू. में पंचवृष्णि वीरों की पूजा हेतु मूर्तियों की स्थापना हुई और एक शैल देव गृह का निर्माण हुआ। कुषाण और गुप्त काल में बने जिन मठ या बिहारों का उल्लेख हमें मूर्ति लेखों से प्राप्त हुआ हैं वे हैं[१७]:

१. हुविष्क विहार, २. स्वर्णकार विहार, ३. श्री विहार, ४. चेनीय विहार, ५. चुतक विहार, ६. आपानक विहार, ७. मिहिर विहार, ८. गुहा विहार, ९. क्रोष्टीय विहार, १०. रोषिक विहार, ११. ककाटिक विहार, १२. प्रावारिक विहार, १३. यशाविहार, १४. खन्ड विहार, १५. अमोहस्सी विहार, १६. श्री कुन्ड विहार, १७. धर्महस्तिस विहार, १८. महासांघिक विहार, १९. पुष्यदत्त विहार, २०. लद्‌यस्क विहार, २१. उत्तरहारुष विहार। यह विहार भिक्षु और भिक्षुणियों के केवल आवास मात्र ही नहीं थे अपितु दर्शन, शिक्षा तथा संस्कृति के केन्द्र थे, जिनमें अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य रहते थे।

ये सब महत्त्वपूर्ण संस्थाएं, देवालय तथा स्तूप कालबेग से इतने नहीं अपितु धर्मान्ध व्यक्तियों की ईर्ष्या से अधिक नष्ट हुए। इस प्राचीन सांस्कृतिक थाती में से बहुत से अवशेष तो उत्खननों से प्राप्त हो गए हैं किन्तु अनेक कलारत्न भूगर्भ में आज भी पुरातत्व वेत्ताओं की प्रतीक्षा में हैं।

कलारत्नों की खोज[१८]:

मथुरा में सर्वप्रथम प्राचीन कलाकृति १८३६ ई. में कर्नल स्टेसी को प्राप्त हुई। मधु–पान नाम से विख्यात कुषाणकालीन यह दृश्य अब भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के जनक जनरल कनिंघम ने १८५३ और १८६२ में यहां कुछ महत्त्वपूर्ण मूर्तियों को खोज निकाला, जिनमें लखनऊ संग्रहालय में विद्यमान (बी. १०) वह मूर्ति भी है, जिसकी पीठिका पर गुप्त संवत् २३० खुदा है और इससे यह अनुमान लगता है कि गुप्तकाल में कटरा स्थान पर यशाविहार नामक बौद्ध मठ था। १८६० में जब कचहरी का भवन बना तो अनेक मूर्तियां उपलब्ध हुई जिनमें मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित विश्वविख्यात बुद्ध मूर्ति भी है (ए. ५)। भगवान् लाल इंद्रा जी को १८६६ में सिंह स्तम्भ का प्रसिद्ध शीर्ष भाग प्राप्त हुआ जो अब ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में है। इसके खरोष्ठी लेख से जानकारी मिलती है कि शक नरेशक्षत्रप राजवुल की पट्टमोहषी कम्बोजिका ने प्राचीन काल में वर्तमान सप्त ऋषि टीले पर गुहा विहार नामक बौद्ध स्थान बनवाया। इससे सिद्ध होता है कि विदेशी शासक भारतीय धर्मों का आदर करते थे। बुद्ध देव तथा बुद्धिल नामक दो सर्वास्तिवादी आचार्यों का भी इसमें वर्णन है जो मथुरा में बड़े प्रसिद्ध होंगे। इसी स्थान से बाद में कम्बोजिका की गांधार शैली में बनी सलेटी पत्थर की प्रतिमा मिली (मथुरा संग्रहालय एफ. ४२)। कनिंघम ने १८७१ के अपने तृतीय अभियान में कंकाली तथा चौबारा टीलों से अनेक कलाकृतियों की उपलब्धि की। १८७३–७४ में मथुरा के तत्कालीन जिलाधीश एफ.एस. ग्राउस की भी प्रबल पुरातात्विक अभिरुचि थी। उन्हें भूतेश्वर से एक मधुपान दृश्य (सी. २) तथा कुछ अन्य स्थलों से नाग और फुटकर वास्तु अवशेष प्राप्त हुए।

सबसे बड़ा पुरातात्विक अभियान १८८८ से १८९१ तक डा. फ्युहरर ने चलाया जिसके फलस्वरुप कंकाली टीले से प्राचीन जैन स्तूप के सैकड़ो अवशेष राज्य संग्रहालय लखनऊ को भेज दिये। इस उत्खनन से प्राप्त सामग्री के कारण लखनऊ संग्रहालय मथुरा कला के अध्ययन के लिए दूसरा महत्वपूर्ण संस्थान बन गया है। १८९६ में डा. फ्यूहरर ने पुनः उत्खनन आरम्भ किए किन्तु स्तूप की दीवालों के मस्जिद के अति निकट होने के कारण उन्हें कार्य बंद करना पड़ा।

चौदह वर्ष पश्चात रायबहादुर पं. राधाकृष्ण ने कलाकृतियों की प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। १९१२ में उन्हें माट ग्राम के निकट टोकरी या इटोकरी नामक टीले से कुषाण राजाओं की अभिलिखित दुर्लभ प्रतिमाएं मिली।

विम कैडफाइसिस, कनिष्क और चष्टन की इन प्रतिमाओं की खोज भारतीय पुरातत्व के इतिहास

में महत्त्वपूर्ण अध्याय था। राधाकृष्ण जी ने मथुरा तथा आसपास के बहुत से कुओं की सफाई कराई और लगभग ६०० कलाकृतियाँ निकालीं। १९३८ में यमुना नदी के किनारे से भी कुछ उल्लेखनीय मृण मूर्तियां संग्रहालय को मिलीं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने कटरा टीले का एक भाग १९५३ में खोदा जिससे पता चला कि यहां के प्राचीनतम अवशेष लगभग १००० ई. पू. के हैं। कुछ पुरातत्ववेत्ता इस प्रकार के अवशेषों को महाभारतकालीन मानते हैं। डा. हर्टिल के नेतृत्व में जर्मन पुरातत्ववेत्ताओं ने मथुरा से ३५ किमी. दूर सोंख नामक स्थान की खुदाई कराई। इससे कलाकृतियों के तिथि निर्धारण में उल्लेखनीय सहायता मिली[१६]।

मथुरा कला शैली :

मथुरा क्षेत्र में कलात्मक अभिरुचि आरम्भ से ही विद्यमान है। भूरे चित्रित पात्रों के अतिरिक्त अति प्राचीन मातृदेवियों की मुण्यमूर्तियाँ जो मौर्य काल से प्राचीन हैं इसका साक्ष्य देती हैं। प्रस्तर मूर्तियां मौर्यकाल से बनने लगी थीं जिनमें तत्कालीन लोक शैली की झलक मिलती है। परखम यक्ष इसका उदाहरण है। शुंगकाल में मथुरा ने मध्यदेश की सांची और विशेषरूप से भरहुत शैली का अनुकरण किया। प्रथम शताब्दी ई.पू. के उत्तरार्द्ध में बनी कुछ प्रस्तर मूर्तियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं। जैसे लखनऊ संग्रहालय का अमोहिनी आयागपट्ट और भगवान् वासुदेव (?) के महास्थान की सूचना देने वाली मंदिर की द्वारशाखा जिसमें कमल की बेल बनी है।

कालान्तर में कुषाण राजाओं के प्रोत्साहन के फलस्वरूप मथुरा ने अपनी निजी शैली का विकास किया। यह नगर न केवल स्वयं कला का प्रमुख केन्द्र हुआ अपितु उत्तर भारत में प्रतिमाओं के निर्यात का प्रधान केन्द्र बन गया। कौशाम्बी, सारनाथ और बोधगया में प्राप्त मथुरा शैली की बोधिसत्व व बुद्ध प्रतिमाएं इसका प्रमाण है। भारतीय कला के बड़े उत्कृष्ट नमूने इस युग में ढाले गए।

गुप्तकाल में कला का विकास अवश्य हुआ किन्तु कुषाणकालीन गति मंद पड़ गई। शरीर सौन्दर्य का आंतरिक भावनाओं के साथ समन्वय इस युग की प्रधान देन थी। इस नूतन लक्ष्य के फलस्वरूप कला में अद्‌भुत निखार दिखाई देता है। इस समय भी मथुरा में बनी मूर्तियां देश के विभिन्न स्थानों में जाती थी। मथुरा शैली की लोकप्रियता के बारे में कनिंघम ने लिखा है कि उत्तर–पश्चिम भारत में भी सभी स्थानों पर प्राचीन बौद्ध मूर्तियां सीकरी पत्थर की बनीं हैं इससे अनुमान लगता है कि उत्तर भारत में बौद्ध मूर्तियों के निर्माण के लिए मथुरा बड़ा प्रसिद्ध केन्द्र था। मथुरा शैली ने अन्य देवमूर्तियों के विकास में भी अच्छी भूमिका निभाई है। कुषाणकाल में ब्राह्मण मूर्तियों के अन्तर्गत हमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, कार्तिकेय, अग्नि, बलराम, कामदेव, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, मातृदेवियों, एकानंशा, यक्ष, नाग आदि के प्राचीन स्वरूपों का परिचय मिलता है। इनमें बहुत सी देव–प्रतिमाएं तो विभिन्न रूपों में प्राप्त हुई हैं, गुप्तकाल में इन मूर्तियों के साथ स्वतंत्र रूप में कृष्ण, गणेश, गंगा, यमुना, दण्ड, पिंगल, हरिहर आदि भी बनते थे। गुप्तकाल की एक और विशेषता भी कुछ देवताओं के साथ उनके आयुधों को मानवरूप में प्रदर्शित करना। कतिपय देवताओं की लीलाओं का अंकन भी प्रिय विषय था।

जैन तीर्थकारों की मूर्तियों का आरम्भ हमें मथुरा में मिले आयागपटों में प्राप्त होता है। इनमें प्रतीकों का बाहुल्य है। शनैः शनैः प्रतीक छोटी सी जिन प्रतिमा के रूप में परिवर्तित होने लगते हैं और कुछ समय में ही तीर्थकारों की स्वतंत्र प्रतिमायें हमारे सम्मुख आ जाती है जिनमें नेमिनाथ, आदिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर का अधिक प्रचलन था।

गुप्तकाल तक की मूर्तियों से कुछ ही तीर्थकर पहचाने जा सकते हैं किन्तु मध्यकाल में इनकी पहचान के लिए आसन पर कुछ निश्चित चिन्ह बनाए जाने लगे। वक्ष पर श्रीवत्स का चिन्ह तीर्थकर मूर्ति की ऐसी पहचान है जो उत्तर मध्यकाल तक चलती रही।

मथुरा शैली के साथ एक बहुत बड़ी विवादास्पद समस्या रही है कि बुद्ध मूर्ति का सर्वप्रथम निर्माण कहां हुआ? कुछ विद्वान गांधार प्रदेश के पक्ष में हैं किन्तु मथुरा को इसका श्रेय दिया जा सकता है। इसका विस्तृत विवेचन आगे यथास्थान किया जाएगा। बुद्ध मूर्तियों के साथ उनकी पूर्व जन्म की घटनायें (जातक कथा), जीवन वृतान्त, बोधिसत्व प्रतिमाएं इन्द्र पंचशिख गंधर्व, कुबेर और हारीति, लोकपाल तथा प्रमुख शिष्यों का भी प्रदर्शन हैं।

मथुरा के शिल्पी ने यद्यपि धार्मिक विषयों का अंकन किया किन्तु यह कहना कठिन है कि वह स्वयं किसी धर्म विशेष का अनुयायी था। बहुत से दृश्य घरेलू तथा सामाजिक प्रकार के है। कही अंतःपुर के दृश्य हैं तो कहीं रमणियाँ वृक्ष के नीचे खड़ी है। कहीं संगीत तथा नृत्य का उत्सव हो रहा है तो दूसरी जगह पानगोष्ठियां। इस प्रकार के विभिन्न दृश्यों से कलाकार ने न केवल कला में बहुरूपता प्रदान की अपितु तत्कालीन जीवन की अनुपम झांकी भी प्रस्तुत की है। ऐसे अंकन में शिल्पी ने स्वतंत्रता–पूर्वक अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है साथ ही लताएं, गुल्म, विभिन्न प्रकार के कमल, अशोक तथा अन्य वृक्ष, काल्पनिक जन्तु और शुभ चिन्हों का यत्र–तत्र सुन्दर चित्रण मिलता है।

भौगोलिक स्थिति के कारण और बार–बार विदेशियों के आगमन से मथुरा में मिश्रित कला शैली का विकास हुआ। यहां यवन, शक, क्षत्रप, कुषाण आदि समय–समय पर अपने प्रभुत्व के हेतु आए और मथुरा नगर विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल बन गया। कला की विधाएं एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में चलती फिरती रहीं इसलिए मथुरा शैली पर बाह्य तत्वों का प्रभाव और वाहय शैलियों पर मथुरा कला की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। सपक्ष सिंह, क़िन्नर, काल्पनिक पशु, कपिशीर्षक, तालवृन्त आदि तथाकथित अनेक विदेशी तत्व मथुरा शैली में दिखते हैं। किन्तु यहां यह स्मरणीय है कि इस प्रकार के कलात्मक प्रतीकों का हमें प्राचीन साहित्य में वर्णन मिलता है। मध्यकाल में निरन्तर विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप मथुरा शैली का निजी ओज समाप्त होने लगता है और मूर्तियां निर्जीव सी प्रतीत होती हैं। लाल पत्थर के स्थान पर हल्के पीले पत्थर का प्रयोग आरम्भ हुआ। अलंकरण बढ़ गया, मूर्तियों के आयुधों और भुजाओं की संख्या में वृद्धि हो गई जिससे उनका प्रभुत्व और शक्ति का प्रदर्शन किया जा सके।

महमूद गजनवी के लेखक अलउतवी ने अपनी पुस्तक तारीखें यामिनी में लिखा है कि मथुरा में उस समय बड़ा विशाल और भव्य मंदिर था जिसे महमूद ने नष्ट कर दिया। उसने यह भी सूचना दी है कि सुल्तान को पांच सोने की मूर्तियां मिलीं जिनमें रत्न जड़े हुए थे। इससे आभास मिलता है कि मथुरा में धातु मूर्तियां भी बनती थीं। इसकी पुष्टि सोंख में चल रहे जर्मन उत्खनन में प्राप्त कुषाणकालीन कांस्य प्रतिमाओं से होता है। बारहवीं शती के मध्य में गहड़वाल वंशी विजयचन्द्र ने कटरा स्थान पर एक बड़े मंदिर का निर्माण किया। मुगलकाल में विशेष रूप से अकबर के समय स्थापत्य की समन्वित शैली का विकास हुआ जिसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही तत्व दिखाई देते हैं। वृन्दावन का गोविंद देव मंदिर इसका सुन्दर उदाहरण है। मुगलकाल के पश्चात अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों में मथुरा में कला और वास्तु दोनों का ह्रास होता चला गया फिर

संस्कारों का सर्वथा लोप नहीं हुआ। १८ वीं से १९ वीं शताब्दी में मथुरा तथा आसपास ऐसे भवन बने हैं जिनमें सराहनीय पच्चीकारी है। संग्रहालय का पुराना भवन ब्रज की आधुनिक प्रस्तर कला का अच्छा उदाहरण है।

संक्षेप में मथुरा शैली की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैः सलेटी रंग की अति प्राचीन तथा शुंगकालीन साँचों में बनी मृण्मूर्तियाँ, प्रस्तर मूर्तियों के लिए चित्तीदार लाल पत्थर का प्रयोग, प्रतीकों का मानवाकृति में परिवर्तन, मध्यप्रदेश मुख्यतः भरहुत की शैली का अनुकरण और विकास, विदेशी तत्वों का मिश्रण, प्राचीन यक्ष शैली का अन्य देव प्रतिमाओं के साथ समन्वय, नई कला विधाओं का विकास, राजपुरुषों की मूर्तियों का निर्माण, स्त्री कलाकृतियों का लावण्यमय तथा आकर्षक प्रदर्शन और जीवन के विशेष पक्षों का कला में अंकन आदि।

संग्रहालयः

यत्र–तत्र सर्वत्र प्राचीन खण्डहरों से घिरा ब्रज प्रदेश यथासमय मूल्यवान कलाकृतियां भूगर्भ से निकालता रहा। इनकी सुरक्षा की आवश्यकता तत्कालीन जिलाधीश एफ.एस. ग्राउस ने अनुभव की और १८७४ में पत्थर के सुन्दर नक्काशीदार छोटे से भवन में कचहरी के पास ही संग्रहालय की स्थापना हुई। (चित्र पिछला आवरण पृष्ठ) लगभग ७ वर्ष तक तो यह मूर्तियों का संग्रह–स्थान रहा और १८८१ में इसे जनता को देखने के लिए खोल दिया गया। सन् १९०० में मथुरा नगरपालिका ने इसका भार अपने ऊपर ले लिया। ८ वर्ष पश्चात् लेफ्टीनेण्ट कर्नल वास्ट संग्रहालय अध्यक्ष तथा पण्डित राधाकृष्ण सहायक अध्यक्ष बने। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के उत्तरीय शाखा के अधीक्षक, डा. वोगल ने १९१० में संगृहीत मूर्तियों का एक कैटलाग तैयार कर प्रशंसनीय कार्य सम्पन्न किया। दो वर्ष पश्चात् संग्रहालय को राज्य सरकार ने अपने अधीन लिया।

संग्रह की निरन्तर वृद्धि के कारण स्थान का अभाव खटकने लगा और सरकार ने १९२६ में डैम्पियर पार्क में १,३६,००० रु. की लागत से नए भवन का निर्माण किया। १९३० में संग्रहालय अपने वर्तमान भवन में आ गया। प्राचीन भवन में जैन संग्रहालय खोला जा चुका हैं। लगभग एक–तिहाई भवन का निर्माण स्वाधीनता के बाद हुआ। लाल पत्थर का अठपहलू भवन हरे–भरे उद्यानों के बीच में बड़ा सुन्दर और भव्य दिखाई देता है। (चित्रः पिछला आवरण पृष्ठ)।

इस समय कलाकृतियाँ ऐतिहासिक क्रम से लगी हुई हैं। सबसे प्राचीन मृत्पात्रों के पश्चात एक वीथिका में मृण्मूर्तियाँ हैं और उसके बाद प्रस्तर मूर्तियाँ की अनेक वीथिकाएं है। संग्रहालय के संकलन में प्राचीन सिक्के, काँस्य मूर्तियाँ, चित्र, हस्तलिखित ग्रंथ आदि हैं किन्तु स्थानाभाव से उन्हें प्रदर्शित नहीं किया जा सका। यह सब सुरक्षित संग्रह में हैं और पूर्व सूचना प्राप्त होने पर शोधकर्त्ताओं के लिए खोले जा सकते हैं। भविष्य में इनकी तथा लोक कला की कुछ वीथिकाएं बनाने का विचार है जिससे ब्रज संस्कृति की पूर्ण झलक दर्शकों को दी जा सकें।

कार्यकलापः

मथुरा संग्रहालय प्राचीन भारतीय कला के अध्ययन केन्द्र के रूप में विकसित हो रहा है और मथुरा शैली के विभिन्न पक्षों में शोध के लिए तो यह प्रधान संस्थान है। इसके समृद्ध संकलन को देखने के लिए विश्व के कोने–कोने से शोधकर्ता तथा दर्शक यथासमय आते रहते हैं। उनकी सुविधा के लिए यहाँ एक अच्छा शोध पुस्तकालय हैं और छायाचित्रों की भी व्यवस्था है किन्तु संग्रहालय केवल अनुसंधान कर्त्ताओं के लिए ही

नहीं है, जन सामान्य तथा छात्र वृन्द भी उतने ही स्वागत के पात्र हैं। वस्तुओं को समझने के लिए वीथिकाओं में चार्ट लगे हैं और कलाकृतियों पर सूचना पट्टिकाएं हैं। वीथिका व्याख्यान प्रदर्शक व्याख्याता तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा भी दिये जाते हैं। संग्रहालय के प्रचार तथा जनता में प्राचीन कला के प्रति रुझान उत्पन्न करने के लिए प्रमुख छोटी मूर्तियों की तदनुरुप अनुकृतियाँ तैयार की जाती है। वस्तुओं की सुरक्षा तथा थोड़े बहुत रसायनिक उपचार के लिए एक छोटी रसायनशाला के अतिरिक्त सज्जा तथा प्रदर्शन के लिए कर्मशाला भी विद्यमान है।

समय :

संग्रहालय सोमवार के अतिरिक्त प्रतिदिन प्रातः १०:३० बजे से ४:३० बजे तक खुला रहता है। राष्ट्रीय दिवसों तथा प्रमुख अवकाशों जैसे जन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली और होली में भी यह बन्द रहता है।

आरम्भः

संग्रहालय में कलाकृतियाँ ऐतिहासिक क्रम से प्रदर्शित की गई हैं। प्रवेश करते ही दर्शक स्वयं को कुषाण दरबार में पाता है जहाँ सम्राट कनिष्क तथा अन्य राजाओं की मूर्तियाँ हैं यहीं उसे संक्षेप में मथुरा कला का परिचय मिलता है। संकेत के अनुसार दर्शक अपने दायीं ओर कुछ कदम चलकर मृण्मूर्तियां की वीथिका के द्वार पर आ पहुंचता है (चित्र ८)। यहाँ से दर्शक को अपने बायीं ओर कलाकृतियों को देखते हुए चलना चाहिए।

सोंख के अवशेष

प्राचीन अवेशेषों के समय निर्धारण में मिट्टी के बर्तनों ने बड़ी सहायता की है। ये ब्रज संस्कृति के सबसे पुराने अवशेष हैं। एक प्रदर्शन कक्ष में दिखाए ये पात्र यहाँ से लगभग ३५ किलोमीटर दूर सोंख के टीले से मिले हैं। इस स्थल की खुदाई जर्मन पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा डा. हर्टिल के नेतृत्व में १९६६ से १९७४ के मध्य की गयी थी। बर्तनों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:

१. भूरे चित्रित पात्र : सामान्यतया इनका रंग भूरा या सलेटी होता है और काली रेखाएं बनी रहती हैं(चित्र १)। कभी कभी हलके लाल रंग में भी भूरी रेखाएं एक दुर्लभ टुकड़े में चिकने पत्थर जैसी चमक है। इस प्रकार के बर्तन लगभग १,००० ई. पू. से ६०० ई.पू. तक के हैं।

२. काले व लाल बर्तन : कुछ ऐसे पात्र हैं जिनका अन्दर का भाग काला और बाहरी हिस्सा काले के साथ अधिकतर लाल है। यह प्रथम वर्ण के साथ मिले हैं और इनका समय भी लगभग वही है।

३. उत्तरी काले चमकीले पात्र (एन.वी.पी.): काली चमकदार पालिश से युक्त बर्तनों का प्रयोग लगभग ५०० ई. पू. से दूसरी शती ई.पू. के अन्त तक रहा। मौर्य काल में इनका विशेष प्रचलन था। इनके साथ दो अन्य बर्तन भी है।

४. कुषाणयुगीन पात्र : कुषाण काल अर्थात् पहली शती ई. से तीसरी शती ई. तक बिना चमक या लेप के बर्तन बनते थे। ये बहुधा लाल रंग के हैं और धार्मिक व मांगलिक चिन्ह उकेरे हुए हैं। टोटीदार करुए का प्रचलन आरम्भ हो गया था। अन्त में गुप्त युग(४थी से ६ठी शती ई.) के दो बर्तन लगे हैं जिनमें दो किनारों वाली एक हाँड़ी हैं और दूसरा है एक धूपदान जिसमें पकड़ने के लिए मूठ भी लगी है।

मृत्पात्रों से अलग एक कक्ष में सोंख उत्खनन से मिली मृण्मूर्तियाँ है जो उत्तर मौर्यकाल से लेकर गुप्त काल तक की है। इनमें तीन कोठरियों का भवन (शाला), नीचे की एक आकृति में जुड़ी अनेक आवक्ष मानवाकृतियाँ, विदूषक, मिथुन आदि प्रमुख है,

बाह्य वीथिका में एक प्रदर्शन कक्ष में जो छोटी कलाकृतियाँ हैं उनमें एक फलक में एक पुरूष आकृति है जिसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। उसके बाईं ओर एक स्त्री आकृति बच्चा लिये खड़ी है, स्त्री मुख कुछ सिंहाकृति है (चित्र २)। दूसरी धातु मूर्ति में स्वामी कार्तिकेय का अंकन है जो माला लिए खड़े है। ये दोनों ब्रज क्षेत्र की प्राचीनतम धातुमूर्तियाँ है।

मृणमूर्तियां[२०]

कला का एक दूसरा माध्यम है मिट्टी की मूर्तियाँ जो प्रायः उन व्यक्तियों के लिए उपयोगी था जो प्रस्तर अथवा धातु का उपयोग नहीं कर पाते थे। मृण्मूर्तियाँ भारतीय संस्कृति के अति प्राचीन अवशेष है। सिंधु घाटी की संस्कृति में भी ये प्राप्त हुई हैं। इन्हें पूजा तथा सज्जा के साथ खेलने के काम में भी लाया जाता होगा।

अति प्राचीन : प्रदर्शन कक्ष सं. १६ में लगी मूर्तियाँ काल निर्धारण की दृष्टि से मौर्य काल के पूर्व की मानी गई है। ये पूर्णतया हाथ से बनी है, चेहरा पशु अथवा पक्षी जैसा है, आँखे उकेर कर बनाई गई है, शरीर पर छोटे गोल निशान अंकित है, शरीर निर्वस्त्र है किन्तु कुछ आभूषण अवश्य हैं वे अधिकतर सलेटी रंग की है और कभी–कभी काली पालिश भी मिलती है (चित्र ३)।

मौर्य कालीनः अगले प्रदर्शन कक्ष सं. २० में मौर्ययुगीन लगभग चौथी व तीसरी शताब्दी ई.पू. की मृण्मूर्तियाँ हैं। सलेटी रंग, अलग से चिपके आभूषण आदि विशेषताएं तो पूर्ववत् हैं किन्तु कुछ नवीनता देखने में आती है जैसे चेहरा अब पशु अथवा पक्षी जैसा न होकर मानवाकृति है। यह प्रायः साँचे में ढाला गया है और शेष शरीर हाथ का बना है। आभूषणों में वृद्धि हो गई है। स्तन तथा नाभि अति स्पष्ट है। केश सज्जा अधिक अलंकृत और विकसित है (चित्र ४)। अब हमें कुछ पशु आकृतियाँ भी मिलने लगती है जैसा कि यहाँ प्रदर्शित हाथी से पता चलता है।

शुंग काल : प्रदर्शन कक्ष सं. १३ में शुंग कालीन (२सरी तथा १ली शती ई.पू.) मृण्मूर्तियाँ है। इनमें अब जो क्रांतिकारी परिवर्तन दीखता है वह है समूची आकृति को साँचे में बनाना। इसीलिए मृण्मूर्तियों की लोकप्रियता बढ़ी और वह बहुत संख्या में बनने लगी। एकमात्र मातृदेवियों की पुरानी श्रृंखला टूटकर अब विषय में व्यापकता आई। आसक्त स्त्री पुरुषों का अंकन इस समय की कला की एक प्रमुख विशेषता थी। स्त्रियों को विभिन्न रूपों में दिखाया गया है। साँचे में ढाले जाने के कारण मूर्तियों में अब अलग से अवयव अथवा आभूषण जोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। निर्वस्त्र रूप में मातृदेवी को अंकित करने की परम्परा समाप्त होने पर भी गुप्तांगो का प्रदर्शन कपड़ो के साथ भी दिखाई देता है। पुरुष मस्तक पर बड़ी पगड़ी प्रायः दो भागों में विभक्त है। सलेटी अथवा काले रंग के स्थान पर अब लाल रंग का प्रयोग हुआ। कला में एक स्वाभाविक निखार और सौष्ठव दिखाई देता है।

अगले प्रदर्शन कक्ष सं. १६ में स्त्री मस्तकों पर सुन्दर केश–विन्यास दिखाई देता है जिसमें कुछ मांगलिक चिन्ह भी हैं। भारत का अब तक विदेशों से व्यापारिक अथवा राजनीतिक संबंध स्थापित हो चुका था इसलिये हमें मृण्मूर्तियों में कुछ विदेशी चेहरे भी मिलते हैं। बीच में एक पारसी युवक कोट उत्तरीय और पतलून या सलवार पहने खड़ा हैं। (चित्र ५)

अगले प्रदर्शन कक्ष सं. १७ में मूर्तियों के उत्पादक सांचो का परिचय दिया गया है। सांचे प्राचीन हैं और उनके साथ नवीन अनुकृतियाँ सांचे का प्रयोग स्पष्ट करती हैं। इसी प्रदर्शन कक्ष

सम्पूर्ण सांचे में ढाली गयी शुंग कालीन एक स्त्री प्रतिमा प्रदर्शित है इसमें स्त्री का केश विन्यास कान एवं गले के आभूषण पैरों में पायजेब सौन्दर्यता से परिपूर्ण प्रदर्शित किये गये हैं।

प्रदर्शन कक्ष सं. ६ में मथुरा कला में उपलब्ध होने वाली कुछ प्राचीनतम देव मूर्तियों के दर्शन होते हैं। यह मथुरा का भारतीय मूर्तिकला में बहुत बड़ा योगदान है।

बीच की आकृति (४३.३०४१) गजलक्ष्मी का प्राचीन स्वरूप प्रदर्शित करती है। ऊपर हमें कामदेव के दो रूप दिखाई देते हैं। सामने तो वह पंख सहित हैं और उसके हाथ में धनुष है (३८.२८४६)। पुष्पों के प्रदर्शन से बसंत ऋतु का भाव प्रकट किया है। बाई और हमें कामदेव की एक सिर विहीन मूर्ति दिखाई देती हैं (३४.२५५२) जिसमें वह पुष्प से अलंकृत धनुष लिये खड़ा है। इस विशेषता से उसका कुसुमायुध अथवा पुष्पायुध नाम सार्थक होता है। प्रदर्शन कक्ष में नीचे श्रीदेवी (समृद्धि देवी ५८.४६६६) अपने बायें हाथ से स्तन को दबाती हुई दीखती हैं। दाहिनी ओर प्रभूत उत्पादन की देवी वसुधारा (३२.२२४३) का दर्शन होता है। मछलियों का जोड़ा उसके प्रजनन स्वरूप का द्योतक है।

प्रदर्शन कक्ष संख्या ६ में स्त्रियों के विविधस्वरूप प्रदर्शित हैं। बीच में अनेक बेड़ियाँ बनाए खड़ी सुन्दर और सुकुमार युवती तिरछी (त्रिभंग) खड़ी हैं (५६.४७४७ चित्र–६)। एक स्त्री तोते से खेल रही है। (४४.३११५) और अन्य अपने जूड़े को संभालती हैं (४६.३४६८)।

अगले कक्ष सं. १० में स्त्री पुरुषों का साथ साथ अंकन दीखता है जो इस युग की विशेषता है। इस प्रकार के फलकों को दम्पती अथवा मिथुन कहते हैं। बाईं ओर एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को आसव पिला रहा है। (६१.५२२७ चित्र ७)। दाहिनी ओर एक पुरुष दो स्त्रियों में गलबाहें डाले है, ये संभवतः नाच रहे हैं। यह प्राचीन लोकनृत्य हल्लीसक का प्रदर्शन हो सकता है (३४.२४७४)। इस कक्ष में ऊपर एक रमणी (४८.३४१०) हाथ में शीशा लिये श्रृंगार में लीन है। किन्तु अधिक उल्लेखनीय है उसकी गद्देदार आराम कुर्सी जो प्राचीन काष्ठकला के विकसित रूप का संदेश देती है। एक छोटे प्रदर्शन कक्ष में शुंग कालीन एक प्रसिद्ध मृणमूर्ति (६६.२ चित्र–८) वीथिका के मध्य में प्रदर्शित है।

कक्ष संख्या ११ में मिट्टी की गाड़ी के छोटे नमूने रखे हैं। इनका इतना अधिक प्रचलन था कि तत्कालीन नाटककार शूद्रक ने अपने नाटक का नामकरण 'मृच्छकटिकम' अर्थात् मिट्टी की गाड़ी किया। बीच में एक फलक में शिकार का दृश्य है (३४.२४११) तो पास में ही यक्ष ढोल बजा रहा है (३२.२२१५) एक व्यक्ति वीणा जैसा वाद्य यंत्र लिये है।

कुषाण मृण्मूर्तियां :अब हम कुषाण कालीन अर्थात् पहली से तीसरी शताब्दी तक की मिट्टी की मूर्तियों के सामने हैं। इनमें पहला जैसा सौष्ठव व सौन्दर्य नहीं है। इसका एक संभव कारण यह हो सकता है कि इस युग में कलाकार प्रस्तर मूर्तियों के निर्माण में अधिक व्यस्त थे फलतः मृण्मूर्तियों की उपेक्षा हुई। सांचो का प्रयोग चलता रहा किन्तु हाथ से भी मूर्तियां ढली। दो सांचो का प्रयोग करके आकृति को बीच में खोखला रखा गया है। सुडौल न होने पर भी कभी कभी भावों का अच्छा प्रदर्शन है। देवताओं की नई आकृतियां दिखाई देती हैं। शेषावतार बलराम (५२.३६३६) सर्प फणों से आच्छादित हैं। अलंकरण पहने एक बोधिसत्व आकृति पद्मासन में अभय मुद्रा में अंकित है। (६१.५२२८) कुबेर और हारीति नूतन प्रयोग है (१६.१५८५) और इनका उकडू बैठने का ढंग भी विदेशी है। बाईं ओर एक विचित्र मस्तक है (४४. ३४१७) जो स्त्री जैसा है किन्तु मूंछे भी दिखाई देती है। कुबेर (३१.२०६५) अपने मोटे पेट और धन

पात्र के लिये प्रसिद्ध है। दाहिनी ओर एक स्त्री आकृति (१५.५०६) तत्कालीन वेदिका स्तम्भ पर बनी यक्षियों का स्मरण दिलाती है। इस शक पुरुष के मुख पर (४७.३३६१) कितनी रहस्मयी मुस्कान है। इस युग में टाइलों का प्रयोग भी होता था। (१८.१४८१) और आकृतियों पर कभी–कभी नीला लेंप भी चढ़ाते थे। तत्कालीन ब्राह्मी लिपि में लिखी किसी कुम्हार की इस मूठ से पता चलता है कि इसका प्रयोग करने वाला कछिप नाम का कोई व्यक्ति था। इधर इस छोटे बैल पर अंकित अक्षरों से पता चलता है कि यह (नन्दी) शिव का वाहन है।

गुप्तकालीन मृण्मूर्तियां : गुप्त काल अर्थात् ४थी से ६ठी शती ई. में मृण्मूर्तियों की कला का पुनरुद्धार हुआ। वैभव संपन्न तत्कालीन समाज इनके वैभव और लावण्य पर मुग्ध हो उठा और मृण्मूर्तियों का कई प्रकार से उपयोग किया जाने लगा। इन्हें देवालयों की बाह्य भित्ति पर, बैठकों में और शयन कक्षों में अलंकार के लिये लगाया जाता था। अब इस कला में अद्भुत सौन्दर्य और आकर्षण दिखाई देता है। शरीर प्रायः युवावस्था व गति से परिपूर्ण है। केश प्रसाधन के कितने ही प्रकार देखने को मिलते हैं। प्रस्तर मूर्तिकला की सभी विशेषतायें मृण्मूर्तियों में पाई जाती है। मथुरा से मिले कितने फलकों से अनुमान लगता है कि गुप्त काल में यहां कोई अच्छा ईटों का मंदिर बना होगा।

कुमार कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर बड़ी शालीनता से आरूड़ है (३६.२७६४ चित्र ६) मयूर की आकृति अब भंग हो गई है, किन्तु उनके बायें हाथ में शक्ति, कंधे पर पड़ी हुई लटें, किशोरावस्था से परिपूर्ण मुख आदि उनकी विशेषताएं विद्यमान हैं। बीच में यह कोई नदी देवता है (००.टी ०६) जो पूर्ण घट लिये है। वाहन की अनुपस्थिति में उसका यथार्थ नामकरण संभव नहीं है। ऊपर की ओर लगे एक फलक में (६१.५२१७ चित्र १०) किसी घरेलु कलह को दिखाया गया है। द्वार अथवा खिड़की से झांकता चेहरा (६५.१३) गुप्त काल का प्रिय विषय था।

प्रदर्शन कक्ष संख्या १३ में कुछ और आकृतियां देखी जा सकती हैं। बीच का फलक (३६.२७६५) संभवतः किसी संस्कृत नाटक के विदूषक का परिचय देता है, जो राजा का विश्वासपात्र था और रानी उससे अपने पति का रहस्य जानने के लिये उत्सुक रहती थी। यहां उसने कुछ न बताने के लिये प्राणायाम का बहाना ढूंढ निकाला है, किन्तु रानी ने उसका उत्तरीय झटक दिया है (चित्र ११)। हमारे बाई ओर संभवतः एक साधु बलिदान की भावना से खड्ग से कायोत्सर्ग कर रहा है। (३८–३६:२७६२) और कौन जानता है कि निराशा में यह आत्महत्या हो अथवा रावण भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए अपना शीश काट कर चढ़ा रहा हो? दाहिनी ओर विष्णु और मोदक प्रिय गणेश हैं। मत्स्य कन्या तथा आसक्त दम्पती का प्रदर्शन भी बहुत सुन्दर है।

प्रस्तर मूर्तियां

मौर्य कालः मृण्मूर्तियों के पश्चात प्रस्तर मूर्तियों की वीथिका में प्रवेश करने पर हमें एक विशालकाय हलके पीले पत्थर की मानवाकृति दीखती है। यह यक्ष प्रतिमा (०० सी. १ चित्र १२) मथुरा कला की सबसे प्राचीन कृति है। मौर्य युग में कला के दो स्वरूप थे। पहली राज्याश्रित और दूसरी देशी या लोक कला। राज्याश्रित कला का परिचय हमें सुडौल पशु आकृतियों व चमकदार पालिश से युक्त अशोक के स्तम्भों से मिलता है। लोक कला का प्रतिनिधित्व यक्ष प्रतिमाएं करती है, जो भारत के विभिन्न स्थानों से मिली है। इनकी रक्षा देवता अथवा ग्रामदेवता के रूप में पूजा होती थी। यह प्रतिमा मथुरा से १४ मील दक्षिण की ओर परखम नामक स्थान से कनिंघम को मिली। भारी भरकम शरीर, कमरबंद तथा भुजबंद, चार फुल्लेदार ग्रैवेयक(गले का हार) और धोती दर्शनीय है। नीचे तत्कालीन ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस मणिभद्र(?) यक्ष प्रतिमा का निर्माण कुणिक के शिष्य गोमित्र ने किया[२१]। यक्ष प्रतिमाओं का सबसे अधिक महत्व यह है कि कालान्तर में अन्य धर्मों की मूर्तियों में इसका अत्याधिक प्रभाव पड़ा।

यक्ष प्रतिमा की समकालीन एक अन्य यक्षी (७८.१) मूर्ति इसी वर्ष नगला झींग नामक स्थान से संग्रहालय को प्राप्त हुई है। यद्यपि कालगति से यह विरूप हो गई है तथापि इसका पृष्ठ भाग कालात्मक है और मूढा दर्शनीय है। इसके पैरों के बीच उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि इसका शिल्पी नाक और उसके आचार्य का नाम था कुणिक। यदि परखम यक्ष तथा इस यक्षी की मूर्ति में अभिलिखित कुणिक एक ही हैं तो ये दोनों कलाकृतियाँ समकालीन अर्थात् उत्तर मौर्य युग की मानी जा सकती है (विवेचन के लिए देखें उ.प्र. संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका भाग ८ दिसम्बर १९७१ प्र. ७१–७३)

शुंग कालः वीथिका संख्या १ में (संग्रहालय की वीथिकाओं की संख्या केवल गणना की सुविधा से दी गई है और इसका कोई तकनीकी महत्व नहीं है) शेष मूर्तियां शुंग कालीन अथवा कुषाण काल के पूर्व की हैं। भरहुत शैली के अनुसार हीं इनमें उभार कम है। बनावट में सादगी है। पुरुषों के मस्तक पर दो कोनों वाली पगड़ियां हैं। यद्यपि शरीर रचना को पूर्ण नहीं माना जा सकता तथापि उसमें सौन्दर्य व सौष्ठव है। महापुरुषों का अंकन मानवाकृति से न होकर प्रतीकों के माध्यम से किया जाता था। भरना कला से प्राप्त यक्ष (८७–१४५) मुंगदर पाणि शुगकालीन कला का उत्कृष्ट प्रतीक हैं।

स्तूप : हमारें बाईं ओर स्तूप के कुछ भाग देखने को मिलते हैं। महापुरुषों की स्मृति में उनके शारीरिक अवशेषों पर जो स्मारक बनाए जाते थे, उन्हें स्तूप कहते हैं। बाल, नख, दांत आदि को एक सुन्दर प्रस्तर अथवा धातु मंजूषा में रखकर उसके ऊपर ईंट या पत्थर का अण्डाकार शिखर जैसा बन जाता था और भक्त लोग बाद में अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त करने के लिए उसके ऊपर एक और परत चढ़ा दिया करते थे और यह अण्ड शनैः शनैः विशाल बनता जाता था। इसकी सुरक्षा

के लिए चारों ओर एक वेष्टनी अथवा वेदिका का निर्माण होता था, जिसमें यत्र तत्र ऐसे द्वार बने रहते थे ताकि उनमें पशु प्रवेश न कर सकें। स्तूप का सबसे महत्वपूर्ण भाग वेदिका होती थी। इसके भी विभिन्न भाग हैं। सबसे नीचे धरती में गड़ा पत्थर आलम्बन पिंडिका कहलाता था, जिसके खांचो में कुछ स्तम्भ खड़े होते थे एक स्तम्भ से दूसरा स्तम्भ जोड़ने के लिए बीच में सूचियाँ रहती थीं, जिन्हें खम्भों के पार्श्व भग में बने खांचो में फंसा दिया जाता था। स्तम्भों के ऊपर एक खुण्टी निकली रहती थी, जिस पर बड़ी धरनी अथवा उष्णीय रख दिया जाता था। इस रचना में गारे की आवश्यकता नहीं थी। तत्कालीन समाज के अध्ययन के लिए वेदिका दर्पण का काम करती है। इससे धार्मिक, सामाजिक, उत्सव संबंधी अनेक दृश्य दिखाई देते हैं। साथ ही कला की दृष्टि से भी यह भाग सर्वोत्कृष्ट था[२२]।

यहाँ प्रदर्शित वेदिका के अवशेषों में हमें कुछ प्रतीक दिखाई देते हैं, जिनके माध्यम से भगवान् बुद्ध के जीवन की कुछ घटनाओं का परिचय कराया गया है। पहला स्तम्भ (१८.१५१६) बोधि वृक्ष द्वारा बोधगया में उनकी ज्ञान चक्र द्वारा उनका सारनाथ में प्रथम उपदेश प्रदर्शित है। तीसरे पट में स्तूप के माध्यम से उनके महापरिनिर्वाण की जानकारी मिलती है (१०.१३०)।

नटी : (..जे. २, चित्र १३) एक बड़े वेदिका स्तम्भ पर नर्तकी जैसी आकृति को कलाकार ने बड़े सधे हाथों से बनाया है। इसका कालात्मक ढंग से बना बड़ा जूड़ा, विविध आभूषण, पैजनी पहने थिरकते पाँव दर्शक के मन में सहज स्पन्दन पैदा करते हैं। साड़ी पहनने पर भी पारदर्शकता के कारण अवयव दिखाई देते हैं। शुंगकालीन कला का यह एक सुन्दर उदाहरण है। साथ ही इससे यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय रंगमंच उस युग में विकसित अवस्था में था।

दीवाल में लगे प्रदर्शन कक्ष में शुंग काल के छोटे नमूने हैं। इनमें कुसुम वाण लिये कामदेव (१८.१४४८) वीणा बजाती स्त्री (जी. ४८) जो सरस्वती का आभास देती है, उल्लेखनीय है। अस्थि फलक पर बनी एक मानवाकृति भी उल्लेखनीय है, जो अफगानिस्तान के बेग्राम नामक स्थान पर मिले हाथी दाँत के फलकों से मिलती है।

दुखोपादान जातकः अगले स्तम्भ में (१५.५८६, चित्र १४) ऊपर एक दृश्य का अंकन हैं जिसमें एक साधु अपनी कुटिया के सामने बैठा है और कुछ अन्य जन्तुओं से वार्तालाप कर रहा है। यह एक जातक कहानी है, जिससे महात्मा बुद्ध के पूर्व जीवन की एक घटना की सूचना मिलती है। किसी दार्शनिक समस्या को सुलझाने के लिये उदाहरण के रूप में भगवान् बुद्ध अपने पूर्व जन्म की घटनाओं का उल्लेख करते थे। एक बार चार भिक्षुओं ने उनसे संसार के महानतम दुःख के बारे में अपने निर्णय सुनाने के लिये कहा क्योंकि उन चारों में इस विषय में बड़ा मतभेद था। बुद्ध जी ने बताया कि पिछले एक जन्म में मैं एक साधु था और तुम जंगल के चार प्राणी। तुम लोंगो में पहले भी इस प्रश्न पर वाद विवाद हो चुका हैं। स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि आप में जो सर्प की योनि में था वह घृणा को सबसे महान् दुःख समझता था। दूसरा था हरिण जिसे डर सबसे बड़ा दुःख प्रतीत हुआ, तीसरा कौआ था, जो क्रोध को दुःख का कारण मानता था और चौथे कबूतर के अनुसार, प्रेम ही दुःख का मूल था। किसी निर्णय पर पहुंच सकने पर आप मेरे पास समाधान के हेतु आये और मैंने समझाया कि घृणा भय, क्रोध और प्रेम दुःख के मूल कारण नहीं है, किन्तु इसका मूल कारण है शरीर धारण करना।

इसी स्तम्भ पर दोनों ओर विविध प्रकार के सुन्दर कमल उत्कीर्ण हैं। वेदिका पर कमलों का अंकन कलाकार को बहुत प्रिय था और इसे शोभ

तथा मंगल का सूचक माना जाता था। कमल अथवा पद्म के अधिक अंकन के कारण ही वेदिका को पद्मवार वेदिका बोलते थे।

दाहिनी ओर कोने में एक मनुष्य धड़ (ई. २२) हैं, जो मोरा गाँव से मिला है। अनुमान है कि यह पंचवृष्णि वीरों की उन प्रतिमाओं में से है, जिनका उल्लेख उसी स्थान से मिले महाक्षत्रप शोडाष के समय के शिलालेख में मिलता है। इस मशालची या चमरधारी (००, आई. १५) के चेहरे का भाव दर्शनीय है या तो यह मशाल के ताप से उद्विग्न है अथवा किसी अधिकारी ने इसे झिड़क दिया है।

आगे सुन्दर कमल लता से उत्कीर्ण किसी मंदिर की द्वार शाखा बहुमूल्य कलाकृति है। इसके लेख से ज्ञात होता है कि किसी वसु नामक व्यक्ति ने एक देवालय महास्थान बनाया, जिसका उद्देश्य भगवान् वासुदेव (?) की पूजा था[२३]। वीथिका में स्वतंत्र रूप से खड़ा यह राजकुमार मुकुट, आभूषण व राजदण्ड से शोभित (००. ई. ७, चित्र १५) कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। हमारे पीछे एक प्रस्तर पट पर (५२.३६२५) शिवलिंग का पूजन अंकित है। द्वार की इस धन्नी (०० एम. १) पर एक विहार का दृश्य है, जिसमें एक व्यक्ति बड़े बर्तन से कोई खाद्य पदार्थ निकाल रहा है और दूसरा किसी गरम पेय पदार्थ को ठण्डा करने में व्यस्त है। कुछ भिक्षुक भोजन कर रहे हैं किन्तु एक ओर वे अपना भिक्षा पात्र बढ़ा रहे हैं। इस दृश्य के इधर–उधर एक स्तूप और एक बोधि या चैत्य वृक्ष अंकित है। एक तोरण से स्त्री प्रवेश कर रही हैं। नीचे वेदिका घण्टावली और कमल की कलियाँ है। धरनी के दूसरी ओर तत्कालीन वास्तुकला का वैभवशाली अंकन हैं। इस कलाकृति का एक महत्व तो यह है कि यह मठ या विहार का प्राचीनतम अंकन है। दूसरे कटरा से इसकी प्राप्ति यह संकेत देती है कि शुंग काल में वहाँ कोई बौद्ध केन्द्र रहा[२४]।

अगली पटिया (४०.२८८१) में अनोत्तत झील का दृश्य हैं, जिसमें सपरिवार जल–क्रीड़ा करता नागराज पर्णक सुमन द्वारा झील का जल सहसा ले जाने के कारण स्तम्भित हो गया[२५]। आश्चर्य, भय और क्रोध का प्रदर्शन दर्शनीय है। पुष्प व कलियाँ भी सुन्दरता से काटी गई हैं।

तोरण धन्नी (०० एम. ३) वीथिका में दूसरी ओर एक लम्बी द्वार पट्टी है, जो वास्तु तथा प्रतिमा कला के विकास में दीपशिखा की भांति महत्वपूर्ण है। दोनों ओर उत्कीर्ण इस पट्टी पर विभिन्न दृश्य उत्कीर्ण है। एक ओर बीच में बोधि गृह है, जिसकी उपासना के लिए भक्तगण माला लिये खड़े हैं। बोधि वृक्ष की शाखाएं एक किलेनुमा भवन से बाहर निकली दिखाई है। हमारे दाहिनी ओर धर्म चक्र प्रवर्तन और महापरिनिर्माण का आभास हो जाता है। दोनों किनारों पर सुन्दर समुद्र कन्याएं है। बोधिगृह की ढालू और बुर्जी सहित इमारत वास्तुकला के विकसित स्वरूप का परिचय देती है साथ ही अनेक खण्डों के स्तूप अत्यन्त उपयोगी है। धन्नी के दूसरी ओर बीच में भगवान् बुद्ध एक गुफा में बैठे है और उनके प्रति आदर अभिव्यक्त करने के लिये देवराज इन्द्र अपने सखा पंचसिख गंधर्व और अप्सराओं के साथ पधारे है। इन्द्र को मुकुट और पंचसिख गंधर्व को वीणा से पहचाना जा सकता है। इन्द्र के पीछे हाथियों में उनका वाहन ऐरावत भी है। इस दृश्य के दोनों ओर मंगल कलश बने हैं और अंत में इस ओर भी समुद्र कन्या का अंकन है। बुद्ध मूर्ति के विकास में यह कलाकृति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। और इसे शुंग तथा कुषाण काल के बीच संक्रमण युग का माना जा सकता है, क्योंकि इसमें भगवान् बुद्ध का प्रतीक और मानव दोनों रूप में एक साथ प्रदर्शित किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि बुद्ध का मानव रूप में अंकन कुषाण काल के पहले ही हो चुका था[२६]।

कुषाण कला
(लगभग पहली से तीसरी शती ई.)

सामान्य विशेषताएं : दूसरी वीथिका से कुषाणकालीन प्रतिमाएं आरम्भ हो जाती है इस युग में कला में अनेक परिवर्तन हुए। आकृतियों में उभार के साथ साथ गठीलापन व दृढ़ता है। देवता के सिर के पीछे प्रभामंडल में हस्तिनख आकृति बनती थी, सिर प्रायः मंडित है अथवा छोटे बाल। बुद्धप्रतिमा एकांसिक संघाटी पहने है, जिसके अनुसार केवल बायां कंधा ढका है। अधोवस्त्र टांग के बीच तक आता है। आंखे खुली हैं और मुख पर स्मित भाव है। पार्श्वचरों की आकृतियाँ भी बड़ी है[२७]। स्त्री आकृतियाँ को इस युग में बहुत आकर्षण और सौंदर्य युक्त बनाया है। जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण तीनों धर्मों की देव मूर्तियां इस युग में पर्याप्त रूप में बनीं।

जैन प्रतिमाएं : वीथिका में बाईं ओर से चलने पर हमें सर्वप्रथम जैन प्रतिमाओं के दर्शन होतें है। साहित्य व किंवदन्तियों के अनुसार जैन धर्म में मूर्तिपूजन अनादि काल से चला आया है किन्तु गाथा साहित्य के आधार पर काल निश्चित नहीं कर सकते। मथुरा में जैन प्रतिमाओं का विकास आयागपटों से आरम्भ होता हैं, जिसमें कुछ कुषाण काल के पूर्व के हैं। स्वतंत्र मूर्ति बनने के पूर्व जैन मुनियों की उपासना के लिये आयागपट्ट अथवा पूजा शिला एक लोकप्रिय माध्यम था। इनमें अधिकतर बहुत से प्रतीक बने रहते थे और जिस तीर्थकर की स्मृति में उसे स्थापित करना होता था उसका नाम लिख दिया जाता था। मथुरा से मिले ऐसे कुछ आयागपट्ट लखनऊ तथा दिल्ली संग्रहालय में भी सुरक्षित हैं। यहाँ प्रदर्शित इस आयागपट्ट (०० क्यू. २ चित्र १६) में तत्कालीन स्तूप रचना की सुन्दर झांकी मिलती है। इसके लेख से ज्ञात होता है कि गणिका लवण शोभिका की पुत्री वसु ने भगवान् महावीर की स्मृति में इसे स्थापित किया। इससे यह आभास मिलता है कि उस समय गणिकाओं को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था[२८]।

दूसरे आयागपट्ट (४८.३४२६) स्तूप के स्थान पर अनेक शुभ चिन्हों के साथ तीर्थकारों की छोटी मानवाकृति भी है। जैन साहित्य में इन शुभ चिन्हों को अष्टमांगलिक चिन्ह बताया है। सामान्यतया ये हैं स्वस्तिक, मीन–मिथुन (मछली का जोड़ा), त्रिरत्न, चैत्य वृक्ष, सरावसंपुट (सकोरे का जोड़ा), भद्रासन, श्रीवत्स और मंगल कलश[२९]।

कालांतर में शनैः शनैः तीर्थकारों की स्वतंत्र प्रतिमाएं बनने लगीं, जो दो रूपों मे मिलती हैं। पहला प्रकार कायोत्सर्ग अथवा दंड है, जिसका तात्पर्य है कि परमार्थ के चिन्तन में उन्होंने शरीर तक का मोह छोड़ दिया है और वह दंड की भांति खड़े है। दूसरे प्रकार में वह ध्यान भाव में आसीन है। तीर्थकर प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अवश्य ही मिलता है जो बौद्ध मूर्तियों में नहीं है साथ ही जैन प्रतिमाएं वस्त्र विहीन हैं और बुद्ध मूर्तियों में संघाटी आवश्यक है। चक्र आदि शुभ चिन्ह महापुरुष के लक्षण के रुप में हथेलियों और तलवों पर अंकित रहते हैं। प्राचीन काल में चौबीस तीर्थकारों में से केवल दो को सरलता से पहचाने

जा सकता है। तदनुसार प्रथम तीर्थकार आदिनाथ या ऋषभ नाथ के कंधे पर जटाएं है और २३वें तीर्थकर पार्श्वनाथ के सिर पर सर्प फण। पार्श्वनाथ की सुन्दर प्रतिमा (०० बी. ६२) फणों पर स्वस्तिक, सरावसम्पुट, श्रीवत्स, त्रिरत्न, पूर्णघट और मत्स्य शुभ चिन्ह बने हैं। एक परंपरा यह भी है कि २२वें तीर्थकर ने मिनाथ श्रीकृष्ण और बलराम के ताऊ समुद्रविजय के पुत्र थे और इन्होंने श्रीकृष्ण को अहिंसा का उपदेश दिया[३०]। इस परम्परा को आधार मानकर कुछ तीर्थकर मूर्तियों के एक ओर बलराम और दूसरी ओर कृष्ण बने हैं, इसलिये उन्हें नेमिनाथ माना जाता है। प्रदर्शन कक्ष २ में (मूर्ति सं. ३४.२४८६) इसका एक प्रमाण है। परिक्रमा करने के लिये चौमुखी या सर्वतोभद्र मूर्तियाँ बनती थी। (०० बी. ६७) जिनमें चारों ओर प्रायः विभिन्न तीर्थकारों की आकृतियाँ हैं। इस मूर्ति के समीप ही बच्चों के रक्षक देवता अजमुखी नैगमेश (३४. २५४७) और शिशु सहित उनकी पत्नी रेवती या षष्टी है (०० ई. २) यहीं हमे एक शिलापट्ट (०० आई. ३८) पर एक नगर का द्वार अथवा दुर्ग दिखाई देता है जिसमें बाजे बजाते हुए एक जूलूस निकल रहा है।

बौद्ध मूर्तियाँ : वीथिका २ के दूसरी ओर बौद्ध मूर्तियां प्रदर्शित हैं। पहले शिलापट्ट (०० आई. ४) पर रोमक जातक का अंकन है। भगवान् बुद्ध एक पूर्व जन्म में कबूतर के रूप में उत्पन्न हुए और अपने मित्रों के साथ वन में एक साधु के पास जाते थे। कालान्तर में उसकी जगह दूसरा साधु आ गया जिसे किसी प्रकार कबूतर का मांस खाने का चस्का लग गया। इस लिप्सा के कारण वह नित्य आने वाले कबूतरों को भी मारने लगा। किन्तु बोधिसत्व कबूतर ने उसकी दुष्टता समझ कर अपने साथियों को बचाया। इस कथानक को पारावत जातक भी कहते हैं। शिलापट्ट में ऊपर की ओर घुमावदार बेल और यक्षों का अंकन है। यह चित्रण गांधार शैली के प्रभाव की ओर संकेत करता है।

बुद्ध मूर्ति का आरम्भ[३१] : विद्वानों में इस विषय पर बड़ा तीव्र मतभेद है कि मानव रूप में बुद्ध मूर्ति का सर्वप्रथम निर्माण गांधार में हुआ अथवा मथुरा में। अधिकांश की मान्यता है कि बुद्ध की मानवमूर्ति कनिष्क के राज्यकाल के आरम्भ में बनी। मथुरा शैली की प्राचीनतम बुद्ध अथवा बोधिसत्व मूर्तियां कौशाम्बी और सारनाथ की है, जिनमें क्रमशः कनिष्क के राज्याहोरण का दूसरा व तीसरा वर्ष अंकित है। यदि कनिष्क की तिथि ७८ ई. मान ली जाय तो यह क्रमशः ८० व ८१ सन् की हैं। इसी प्रकार मथुरा संग्रहालय में विद्यमान महोली से मिली विशाल बोधिसत्व प्रतिमा है (३८.२७६८) कटरा से प्राप्त विख्यात बोधिसत्व प्रतिमा (००ए.१ चित्र १७) और आन्योर से मिली बुद्ध मूर्ति (००ए. २) लगभग इसी काल की हैं। इनकी कला अत्यन्त विकसित है और यह अनुमान लगाना बड़ा स्वाभाविक है कि इनसे पहले भी बुद्ध मूर्तियों के निर्माण की कोई परम्परा मथुरा में अवश्य रही होगी। कौशाम्बी, सारनाथ और बोधिगया में कनिष्क के राज्यकाल के आरम्भ में इतनी बड़ी और विकसित मूर्तियां तभी भेजी जा सकी होंगी। जब मथुरा शैली ने पहले से ही पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली होगी। उस समय यातायात के मन्द साधन थे और इस प्रसिद्धि में कुछ वर्ष अवश्य लगे होंगे। इसीलिये यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि कनिष्क के पहले भी बुद्ध मूर्तियाँ किसी न किसी रूप में विद्यमान थीं।

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि शुंग कला में बुद्ध जी को प्रतीकात्मक ढंग से दिखाया जाता था किन्तु ब्राह्मण धर्म की मूर्तियाँ प्रचलित थीं। परखम यक्ष, वृष्णि वीरों की मूर्तियाँ और बलराम (लखनऊ संग्रहालय) इसके उदाहरण हैं। मूर्तियों के माध्यम से ब्राह्मण धर्म की लोकप्रियता बढ़ रही

थी इससे दूसरे संप्रदाय भी आकर्षित हुए। प्रतीक चित्रण जनमानस की भावना को बहुत समय तक संतुष्ट न कर सका। पारस्परिक स्पर्द्धा के फलस्वरूप जैन तथा बौद्ध धर्म को मूर्ति पूजा का माध्यम अपनाना पड़ा। आरम्भ जैन धर्म ने किया और महायानियों के प्रभाव से बौद्ध धर्म ने भी अनुगमन किया। यक्ष मूर्तियाँ नमूने के रूप में पहले से ही विद्यमान थीं इसलिये बुद्ध व बोधिसत्व मूर्तियों में यक्ष शैली का अनुकरण होने लगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्धमूर्ति के विकास में कनिष्क का राज्यारोहण इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि मथुरा का तत्कालीन तथा उसके पूर्व का धार्मिक वातावरण। कनिष्क की निजी अभिरुचि के प्रभाव से बुद्ध मूर्तियाँ सुन्दर तथा बहुल संख्या में अवश्य बनने लगीं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि कनिष्क के पूर्व की कौन सी प्रतिमाएं हैं? छान–बीन करने पर प्रतीत होगा कि लखनऊ तथा मथुरा संग्रहालय में कुछ ऐसी आकृतियाँ हैं जो कनिष्क के पूर्व बनीं। इसका संकेत किया जा चुका है कि मूर्तियों के बनने के पहले जैन धर्म में आयागपट्ट अथवा पूजा शिलाओं की स्थापना होती थी और इनका समय प्रथम शताब्दी ई.पू. का उत्तरार्द्ध अथवा प्रथम शती ई. का पूर्वार्द्ध है, जो बुद्ध मूर्तियाँ आयागपट्ट की छोटी जैन आकृतियों से मिलती हैं वे उसी समय की अथवा कुछ समय बाद की है। किसी भी दशा में वे कनिष्क के सिंहसनारुढ़ होने से पूर्व की अवश्य हैं। मथुरा संग्रहालय में इस प्रकार की दो मूर्तियाँ हैं पहली मूर्ति (०० एच. १२), वीथिका २ में बौद्ध मूर्तियों की और दूसरी में महात्मा बौद्ध चार लोकपालों के साथ प्रदर्शित हैं। उनके शरीर की रचना व बैठने के ऊंचे आसन में आयागपट्ट की जैन प्रतिमाओं से पर्याप्त साम्य हैं। दूसरी मूर्ति द्वार की धरनी है (०० एम. ३) जिसके महत्व पर शुंगकालीन वीथिका में ही प्रकाश डाला जा चुका हैं। इसमें इन्द्रशैल गुहा में इन्द्र द्वारा बुद्ध जी के प्रति आदर भाव दिखाया गया है और दूसरी ओर प्रतीकों के माध्यम से भगवान् बुद्ध की जीवन घटनाओं का अंकन है।

प्रथम शताब्दी ई. में प्रतीकोपासना चलती रही। एक पटिया पर (३६.२८६२) संकाश्य में भगवान् बुद्ध का तुषित नामक स्वर्ग से अवतरण दिखाया गया है। बोधि प्राप्ति के अनन्तर वह वहाँ उपदेश के लिये गये थे। तुषित स्वर्ग का प्रदर्शन सिद्धार्थ की पगड़ी से किया गया है जो उन्होंने गृह त्यागते समय उतार फेंकी थी। इन्द्र ने उसे चूड़ामणि चैत्य के रूप में स्वर्ग में स्थापित कर दिया था[३२]। स्वर्ग से पृथ्वी तक तीन सीढ़ियाँ भी दिखाई देती हैं।

दूसरे शिलापट्ट में (५६.४२३६) उष्णीष की पूजा अंकित है जिसके बारे में अभी बताया गया है। इसके पश्चात हमें पश्चिमी दीवाल पर प्रभामण्डल (३६.२६६३) का अंकन दिखाई देता है।

आन्योर से मिली यह बुद्ध प्रतिमा (००ए.२) कुषाण काल की अत्यन्त प्राचीन कृति है। इसके अभिलेख से प्रकाश पड़ता है कि यह उत्तर हारुष नामक बिहार में स्थापित की गई। इस विशाल बुद्ध मस्तक में (०० ए.२७ चित्र १७) कुषाण काल के प्रायः सभी विशेषताओं का समावेश हो गया है मुण्डित मस्तक पर ऊपर ज्ञान प्राप्ति सूचक ऊर्ध्व भाग है, आँखे गोल व खुली हैं, दोनों भौहों के बीच ऊर्णा का गड्ढा है जिसमें संभवतः कभी कोई मणि लगी होगी। कान का नीचे का भाग छोटा है और मुख पर है स्मित भाव। पीछे की ओर स्वतंत्र रू से प्रदर्शित मूर्ति (००.एच.२) में एक ओर श्रृंग पेटिका थामे है किन्तु मुख्य दृश्य दूसरी ओर जिसमें जन्म के पश्चात भगवान् बुद्ध का नन्द और उपनन्द नामक दो नाग राजाओं द्वारा अभिषे किया जा रहा है। इस अवसर पर दैवी वाद्य

(पंच तूर्य) बजने लगे थे। यहाँ हम बाएं से दाएं वंशी, शंख, मृदंग, पंचतंत्री वीणा और लकड़ी से बजाया जाता हुआ ढोल देखते हैं।

संग्रहालय को एक दुर्लभ यक्षध्वज (७२.२ चित्र १८) प्राप्त हुआ है जो मथुरा कला में अब तक अप्राप्त रहा है। नीचे दो सिंह हैं उनके बीच से ताल या कटैया का पत्र है ऊपर तुंदिल मानवाकृति (यक्ष) है जिसकी दोनों जांघे मकर मुख से दिखाई गई है। यह यक्ष शालभंजिका जैसी दो स्त्री आकृतियों को ऊपर उठे अपने दोनों हाथों में साधे था ठीक इसी अंकन की दूसरी ओर भी पुनरावृत्ति हुई है। इस जटिल चित्रण का अभी उचित स्पष्टीकरण नहीं मिल सका है।

दोनों ओर बनी यह मूंछधारी यक्ष प्रतिमा (००सी. २५) अपने तुंदिल पेट और छोटे हाथ पैरों से कुबेर नाम सार्थक करती है जिसका तात्पर्य हैं भौंड़ी आकृति(कु+बुरी+बेर=आकृति)। मानव अथवा देव प्रतिमा के अधोभाग (१२.२१४) के साथ प्रदर्शित सिंह तथा बौने की आकृति को देखते हुए दर्शक इच्छानुसार कक्ष संख्या २ में प्रदर्शित कुछ अन्य छोटी बुद्ध प्रतिमाओं को देख सकता है।

वीथिका ३ में प्रवेश के पूर्व एक विशाल अभिलिखित स्तम्भ (०० क्यू. १३) मथुरा में कुषाण सम्वत् २४ = १०२ ई. में हुए एक यज्ञ का उल्लेख करता है जो द्रोणल नामक ब्राह्मण ने १२ दिन तक किया।

गान्धार शैली

सामान्य विशेषाएं : अविभाजित भारत का उत्तर–पश्चिमी सीमान्त तथा अफगानिस्तान का क्षेत्र गांधार कहलाता था। अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण यह विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल बन गया। पूर्व और मुख्य रूप से भारत विजय के महत्वाकांक्षी यवन, शक, पल्हव, कुषाण आदि इसी प्रदेश से भारत में आए और कुछ समय तक यहां रहकर अपनी छाप छोड़ते गए। अनेक विदेशी तत्वों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप एक मिश्रित कला शैली का जन्म हुआ जिसे गांधार कला कहते हैं[33]। विदेशी प्रभाव से युक्त होने के कारण इसे यवन बौद्ध, यवन भारतीय आदि के नाम से पुकारा जाता है। इस शैली की मुख्य विशेषाताएं ये हैं––

सलेटीरंग के पत्थर का प्रयोग हुआ है और बाद में खड़िया या गच पत्थर भी काम में लाया गया। शरीर रचना में यूनानी प्रभाव अधिक है मुखाकृति में भी विदेशी प्रभाव है और वस्त्रों की सलवटें यूनानी व रोम के कला का स्मरण दिलाती है कि गांधार कला में भारतीय विषयों का अंकन विदेशी शैली के माध्यम से हुआ है।

इस शैली का तिथि निर्धारण जटिल तथा विवादास्पद विषय है। कुछ मूर्तियां अभिलिखित हैं किन्तु उनके कोई निश्चित सम्वत् नहीं हैं फिर भी विद्वानों का अनुमान है कि इसके पल्लवन का समय प्रथम शताब्दी ई. के पूर्व भाग से कुषाण काल के अंत तक था। गांधार प्रतिमाएं तख्तेबाही, हड्डा, जमालगड़ी, तक्षशिला, चारसड्ढा, होती मर्दन, सहबाजगड़ी आदि स्थानों से मिलीं। इस बीथिका (संख्या 3) में प्रदर्शित मूर्तियों में कुछ मथुरा तथा आसपास से मिली हैं और कुछ पश्चिमोत्तर भारत की हैं। यहां मुख्य मूर्तियों का परिचय दिया जायगा।

कम्बोजिका : (00 एफ. 42 चित्र 19) वीथिका 3 के बीच में प्रदर्शित यह स्त्री प्रतिमा गांधार शैली का सुन्दर नमूना हैं इसका वस्त्र विन्यास, केश सज्जा, मस्तक पर गोल माला, गुथी चोटी और पीछे लटकते दो फीते यूनानी कला के परिचायक हैं। यह स्थानीय सप्तऋषि टीले से मिली है जहां से एक प्रसिद्ध सिंह शीर्ष मिला था जो अब ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में है। उसके खरोष्टी लेख से ज्ञात होता है कि शक क्षत्रप राजवुल की पत्नी कम्बोजिका ने वर्तमान सप्तऋर्षि नामक स्थान पर प्राचीन काल में एक गुहा विहार की स्थापना की थी। इसलिए कुछ विद्वान् इसे कम्बोजिका मानते हैं[24]। किन्तु अन्य केवल हारीति प्रतिमा बताते हैं।

प्रदर्शन कक्षों में रखी कुछ महत्वपूर्ण मूर्तियां हम अपने बाएं से दाहिनी और चलते हुए देखें।

दीपंकर जातक : (18,1543 चित्र 20) प्रस्तुत कला–कृति किसी स्तूप के अण्ड का भाग है जिसमें दीपंकर जातक की कथा अंकित है। दीपंकर 24 बुद्धों में प्रथम माने जाते हैं। एक बार जब वे रम्भक नामक नगर में गए तो वहां के राजा ने उसके स्वागत में सभी प्राप्य पुष्प मंगा लिए। सुमति अथवा सुमेध नामक एक युवक साधु अपने श्रद्धासुमन अर्पित करना चाहता था किन्तु कहीं भी फूल न मिल सके। अन्त में उसने एक कन्या को कुछ कमल लिए देखा। सुमति ने मांगे तो कन्या ने प्रस्ताव किया कि यह वचन

होग कि तुम भावी जन्मों में मेरे पति होगे। कन्या को वचन देकर सुमति दीपंकर बुद्ध के पास आया और उसने दूर से ही वे पद्म पुष्प उनके सिर पर फेंके। उन फूलों ने भगवान् बुद्ध के चारों ओर एक प्रभा मण्डल बना दिया। तदनुसार सुमति दीपंकर बुद्ध के सामने झुका और उनके पैरों को मिट्टी से बचाने के लिए अपने बालों पर रखने के लिए कहा। दीपंकर बुद्ध ने भविष्यवाणी की कि सुमति शाक्य मुनि बुद्ध के रूप में उत्पन्न होगा। इस अंकन में चौथी आकृति उस कन्या की है जो वचन लेकर सुमति को पुष्प दे रही है। पुष्प प्राप्त कर सुमति दीपंकर के सिर पर फूलों की वर्षा करता है और अपने बालों को फैला रहा है। तद्नसार वह आकाश में भी उड़ा।

मूर्ति संख्या 24.2530 भगवान बुद्ध के जन्म की घटना का अंकन करती है। माता मायादेवी शाल वृक्ष के नीचे खड़ी हैं। दाहिनी ओर इंद्र नवजात शिशु को ग्रहण कर रहे हैं और बाई ओर मायादेवी की बहन महाप्रजापती सहायता कर रही हैं, अन्य स्त्री आकृति कोई दासी है।दूसरी मूर्ति (34.2531) में सिद्धार्थ का विद्यालय गमन है। गुरू विश्वामित्र बालक की विलक्षण बुद्धि से बुद्ध जी ध्यानाभाव में बैठे हैं। (34.2527) मूर्ति संख्या 18. 1550 (चित्र 21) गांधार शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें भगवान् बुद्ध को कठोर तपस्या में लीन दिखाया है। तप का श्रम उनके क्षीण शरीर से स्पष्ट ज्ञात होता है जिसमें वह अस्थि–पंजर मात्र रह गए हैं। गांधार शिल्पी यथार्थ स्थिति को अभिव्यक्त करने में बहुत दक्ष था। बुद्ध जी के दोनों ओर श्रपुष तथा मल्लिक नामक दो व्यापारी हैं जिन्होंने उन्हें भिक्षा दी। इसके पश्चात हम उन्हें ध्यान भाव में देखते हैं। (34.2536) वे बोधि वृक्ष के नीचे हैं। मुंछों के प्रदर्शन में स्पष्ट रूप से विदेशी प्रभाव है। पगढ़ी अथवा मुकुटधारी व्यक्ति इंद्र हो सकता है। अगली आकृति में (11.161) भगवान् बुद्ध के पास इन्द्र तथा ब्रह्मा इस निवेदन के साथ आए हैं कि वह स्वर्ग में चलकर देवताओं को धर्म का उपदेश दें।

ज्योतिष्कावदान : (27–28.1685) एक बार जब भगवान् बुद्ध राजगृह में भिक्षाटन कर रहे थे तो सुभद्र नामक निर्ग्रन्थ (जैन) उपासक ने उन्हें भिक्षा देते हुए अपनी भावी संतति के बारे में प्रश्न किया। बुद्ध जी ने बताया कि बहुत होनहार पुत्र होगा। इस समाचार से सुभद्र तो प्रसन्न हुआ किन्तु बुद्ध जी के प्रति बढ़ते हुए आदर को देखकर निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय वालों को ईर्ष्या हुई और उन्होंने सुभद्र को बताया कि बालक बड़ा दुर्भाग्यशाली होगा। इस दुर्भाग्य से बचने के लिए सुभद्र ने अपनी पत्नी को गर्भपात की कुछ औषधि दी जिससे स्त्री का देहान्त हो गया। जब उसके शव को चिता पर रख दिया गया तो बुद्ध जी को वह समाचार ज्ञात हुआ और वह अपने अनुयायी प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक जीवक के साथ घटना स्थल पर आए। उनके आदेशानुसार जीवक ने शल्य क्रिया से स्त्री के उदर से बच्चे को जीवित निकाल लिया। बाद में राजा बिंबसार ने इसे पोषित किया। यहां जलती चिता (ज्योति) से जीवक बच्चे को निकाल रहा है। इसीलिए शिशु का नाम ज्योतिष्क पड़ा और यह कथानक ज्योतिष्कावादन के नाम से प्रसिद्ध है। जीवक के बाद दो व्यक्तियों के पैर दिखाई देते हैं। जिनमें से एक भगवान् बुद्ध के होंगे।

नाग अपलाल (34.2540) इस मूर्ति में नागराज अपलाल की कथा वर्णित है। एक बार भगवान् बुद्ध स्वात घाटी में विचरण कर रहे थे कि वहां के निवासियों ने नागराज अपलाल के क्रूर कर्मों का विवरण दिया। बुद्ध जी ने अपने अनुयायी वज्रपाणि को आदेश दिया कि नागराज को दण्ड दिया जाय। वज्रपाणि ने अपने वज्र से पर्वत पर गंभीर प्रहार करना आरम्भ किया जिसके डर से

अपलाल को निकल कर बाहर आ बुद्ध जी से क्षमा याचना करनी पड़ी। यहां हम बज्रपाणि को पर्वत पर प्रहार करते और सर्पफणों से आच्छादित अपलाल को भयभीत मुद्रा में देखते हैं।

रूपसी का त्याग (18.1545) माकन्दिक नाम के एक ब्राह्मण मुनि बुद्ध जी के आकर्षक व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने निश्चय किया कि पुत्री अनुपमा का विवाह भगवान् बुद्ध के साथ कर दिया जाय। इस निश्चय के साथ वह हाथ में जल पात्र लिए अपनी सुन्दरी कन्या के साथ संकल्प बोलते हुए बुद्ध जी के पास पहुंचें किन्तु बीतराग बुद्ध ने कहा कि जब मैं समस्त संसार व वैभव को त्याग चुका हूं तो इस कन्या से विवाह करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अगली मूर्ति में (34.2538) कुछ व्यक्ति किसी बात को सुनने की मुद्रा में हैं, संभव है यह मायादेवी के स्वप्न की व्याख्या का प्रसंग हो। आगे (34.2541) फलक के ऊपरी भाग में मालाधारी यक्ष है और नीचे कुछ व्यक्ति हाथ में पुष्प लिए द्वार के बाहर जा रहे हैं संभवतः यह बिंबसार द्वारा राजगृह में बोधि प्राप्ति के पश्चात् भगवान् बुद्ध के स्वागत का दृश्य हो। अगला फलक (34.2542) भी इसी घटना से संबन्धित प्रतीत होता है। मूर्ति संख्या (34.2543) में भगवान् बुद्ध दोनों कंधों को ढके हुए वस्त्र (उभयांसिक संघाटी) पहने बैठे हैं। दोनों भौंहों के बीच में ऊर्णा अंकित है। मुख पर सुन्दर युवाभाव है। गांधार शिल्पी इस प्रकार की सुडौल आकृतियां बनाने में कुशल था। कतिपय और छोटी मूर्तियों को देखते हुए हम अंतिम प्रदर्शन कक्ष में बोधिसत्व मूर्तियों को देखते हैं जो आभूषणों से युक्त हैं। मूर्ति संख्या (27–28.1689) ध्यानभाव में सिद्धार्थ को दिखाती है और बाद की दो मूर्तियां (16.1255 व 27–28.1688) भावी बुद्ध मैत्रेय का प्रदर्शन करती हैं जो आभूषण तथा तावीज पहने हैं और हाथ में अमृतघट लिए है।

गांधार शैली में कुछ यक्ष जैसी प्रतिमाओं का अंकन हुआ जिन्हें भार वहन करते हुए दिखाया गया है इनमें यूनानी प्रभाव स्पष्ट है। ऐसी मूर्तियों को एटलांटिस (11.160) कहते हैं।

लगभग तीसरी चौथी शताब्दी ई. में गच (स्टको) का प्रयोग गांधार मूर्तियों के निर्माण मे अधिक होने लगा (49.3476) इन्हें कभी कभी रंग भी दिया जाता था। इस ध्यानस्थ बुद्ध मूर्ति मे लाल रंग के चिन्ह है।

गांधार कला भारतीय कला में बहुत स्थायी छाप न छोड़ सकी यद्यपि इससे तात्कालिक मथुरा शैली अवश्य प्रभावित हुई[35]। दोनों शैलियों ने आपस में कुछ आदान–प्रदान भी हुआ। कटैया व पत्तों का अलंकरण लहरदार बाल दोनों कंधों को ढकने वाला वस्त्र, आसवपान के दृश्य, मूछें, चन्द्र के सहित मैत्रेय, मालाधारी नग्न यक्ष व भारवाह यक्ष चप्पल पहने बोधिसत्व के चरण, बज्रपाणि विषय को विभक्त करते हुए आकृति सहित आ पंचिक और हारीति अथवा कुबेर के साथ हारीति नुकीली टोपी पहने विदेशी पुरुष, योजनाबद्ध उभ हुई चुन्नटें आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिन्हें मथुरा शैली को प्रभावित किया। किन्तु शनैः श ये विशेषताएं या तो लुप्त होती गयीं अथवा गु काल में भारतीय पुनर्जागरण के समय उ समाहित हो गई।

दूसरी ओर मथुरा कला ने भी गांधार क पर अपनी छाप डाली। एक कंधे को ढकता व हथेलियों पर यदा कदा चक्र, घुंघराले बाल, सिंहा कमलासन, कमल, लता, विषय को विभक्त क वेदिका, तोते से खेलती स्त्री, स्त्री और वृक्ष अ शालभंजिका, मुख्य मूर्ति से अन्य शरीरों निकलना, द्वारशाखाओं को साधे हुए सिंह, तथा मोर आदि मथुरा कला के प्रतीक हैं गांधार शैली में यत्रतत्र छिटके पड़े हैं[36]।

कुषाण कला (पुनः)

आसवपायी कुबेर : गांधार कला कृतियाँ दिखाकर हम दर्शक को पुनः मथुरा कला की झांकियाँ दिखाएंगे। सामने एक मोटे पेट वाला व्यक्ति अथवा यक्ष चट्टान पर बैठा है। (00 सी 2 चित्र 22) और सुन्दरियों के हाथ से सुन्दर चषकों में सुरापान में व्यस्त है। दूसरी ओर मद्यपान का प्रभाव देखने को मिलता है, जहाँ प्रमत्तावस्था में अनुचर सहारा दे रहे हैं। इस प्रकार के दृश्यों का ठीक–ठीक स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है। मथुरा से ऐसी तीन मूर्तियां मिली हैं। दो अन्य कलकत्ता तथा दिल्ली संग्रहालयों में हैं। इन्हें मद्यपान दृश्य अथवा आपान गोष्ठी कहा जाता है। स्त्री तथा पुरूषों की वेशभूषा, नंगे बच्चे आदि में यूनानी शैली का प्रभाव है तो प्यालों का अलंकरण ईरानी शैली का संकेत देता है[37]। किन्तु धोती पहने बैठा मुख्य व्यक्ति भारतीय है। संभव है यह आसवपायी कुबेर हों, जो सुमेरू अथवा कैलाश पर बैठे हैं। इस प्रकार इनमें यूनानी, ईरानी और भारतीय कला का अंकन मिलता है। संभव है हमारे तत्कालीन नरेश अथवा धनपति विदेशी सुरा सुन्दरियों के पाश में बंधकर सत्ता से हाथ धो बैठे होंगे।

दीवाल के सहारे लगी एक और आकृति कुबेर या यक्ष का स्मरण दिलाती है। (सी–3 चित्र 23) इसके मोटे पेट पर विशाल सिर है और पैर अनुपात से छोटे हैं। तोंद को साधने के लिए एक दुपट्टा बाँध रखा है। अनुपात हीन होने पर भी मुख पर संतुष्टि का भाव दर्शनीय है। संभव है यह भारवाही यक्ष की प्रतिमा हो किन्तु भुजाओं के न होने से इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। मुंछे विदेशी प्रभाव को इंगित करती हैं।

कटरा बोधिसत्व : वीथिका २ में आने पर हमें एक प्रसिद्ध मूर्ति दिखाई देती है, जो कटरा के टीले से प्राप्त हुई (00-ए.–1 चित्र २५)। बुद्ध अथवा बोधिसत्व बोधि वृक्ष के नीचे सिंहासन पर आसीन हैं। उनका मुण्डित मस्तक का कुछ भाग उठा है। प्रभामण्डल, हस्तिनख आकृति से अंकित है। दोनों भौंहों के बीच में ज्ञान प्राप्ति का सूचक ऊर्णा का उभरा हुआ चिन्ह है केवल एक कंधे पर उत्तरीय पड़ा है और हाथ एवं तलवों पर स्वस्तिक, चक्र, त्रिरत्न आदि महापुरुष लक्षण अंकित हैं। उनके दोनों ओर चमरधारी अनुचर अथवा उपासक हैं और ऊपर दो विद्याधर आकाश से पुष्प वृष्टि कर रहे हैं। यद्यपि मूर्ति साधुवेश में है तथापि इसका अभिलेख इसे बोधिसत्व बताता है। यह सर्वांग सुन्दर और लगभग सम्पूर्ण मूर्ति कुषाण कला का अद्वितीय उदाहरण हैं।

सौभाग्य से संग्रहालय को भगवान बुद्ध की एक आदम कद प्रतिमा (71.105 चित्र सं. 24) मथुरा नगर के चौरासी के पीछे रामनगर नामक स्थल से प्राप्त हो गई है। यह भी कुषाण कालीन कला का श्रेष्ठ साक्ष्य प्रस्तुत करती है। बुद्ध जी दाहिना हाथ अभय मुद्रा में उठाए खड़े हें और बाएं कन्धे पर एकांसिक संघाटी है दहिने हाथ के बीच में अलंकृत चक्र बना है और अंगुलियों के अग्र भाग पर स्वस्तिक बना है। मुण्डित मस्तक के पीछे विशाल प्रभामंडल है जिसके किनारे पर हस्ति नख का अंकन है। सिर के ऊपर उष्णीष का कुछ उठा भाग दीखता है, दोनों भौहों के बीच सुन्दर ऊर्णा बनी है; आँखे गोल हैं। मुख का भाव प्रभावयुक्त है।

कटरा बुद्ध के सामने महोली से प्राप्त बोधिसत्व की विशाल प्रतिमा (38.2798) है। रचना में यह सारनाथ और कोशाम्बी की मूर्तियों से मिलती है तथा इसमें यक्ष मूर्तियों की विशेषताएं विद्यमान हैं। बायां हाथ कटिन्यस्त है। कमल का सा गुच्छा दोनों पैरों के बीच में दीखता है। डा. हार्टिल इसे सिद्धार्थ का उष्णीष मानते हैं। यदि यह ठीक है तो इसके पैर के नीचे होने की स्थिति यह संकेत करती है कि राजत्व से बुद्धत्व अधिक श्रेयस्कर हैं। इसके आसपास अन्य मूर्तियां भावी बुद्ध मैत्रेय की हैं, जैसाकि उनके आभूषण, ताबीज और कंधे पर पड़े बालों से अभिव्यक्त होता है।

आगे दीवाल के सहारे एक ऊंचा प्रस्तर खण्ड है (00. पी. 79) जिनमें पान, संगीत और शृंगार के दृश्य अंकित हैं। वाद्य यंत्रों में वंशी, वीणा या सारंगी और मजीरा (?) हैं। स्त्रियां बुने हुए मूढ़े पर बैठी हैं।

बुद्ध जी की जीवन घटनाएं– दूसरी दीवाल के सहारे भगवान् बुद्ध की जीवन घटनाएं अंकित हैं। मूर्ति (संख्या एच. 10) के निचले कक्ष में दीपंकर जातक का दृश्य है, जिसके सम्बन्ध में गांधार वीथिका में बताया जा चुका है। यहाँ सुमति को भगवान् बुद्ध के सिर पर पुष्प विखेरते हुए दिखाया है। ऊपर के कक्ष में उस घटना का उल्लेख है, जब बुद्ध जी को राजगृह में घूमते हुए मार्ग में दो बच्चे दिखाई दिए। उनमें से एक भगवान बुद्ध को कुछ देने के लिए अत्यन्त उत्कंठित हो उठा, किन्तु उसके पास कुछ न था। अतः उसने भिक्षा–पात्र में एक चुटकी धूल डाल दी। बालक के इस परोपकारी भाव से वह बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भविष्यवाणी की कि यह बच्चा अगले जन्म में महान् बौद्ध राजा होगा। किंवदन्ती यह है कि यही बालक आगे सम्राट् अशोक के रूप में जन्मा और उसका साथी अशोक का मन्त्री बना। इस घटना का अंकन गाँधार कला में भी पर्याप्त मिलता है।

अगला शिलापट्ट (00 एच01) बुद्ध जी की प्रधान जीवन–घटनाओं का अंकन करता है। हमारे दाहिनी ओर से सर्वप्रथम उनके जन्म का दृश्य है, जिसमें शाल वृक्ष के नीचे मायादेवी खड़ी हैं और साथ में उनकी बहन महा प्रजापती। दूसरी ओर इन्द्र बच्चे को ग्रहण कर रहे हैं। नीचे नागराज नन्द और उपनन्द द्वारा प्रथम अभिषेक किया जा रहा है। जन्म के पश्चात् उनकी बोधि वृक्ष के नीचे तपश्चर्या है। कामदेव विभिन्न चेष्टाओं से तपस्या में विघ्न डालने के प्रयत्न में हैं तो बुद्ध पृथ्वी को छूते हुए (भूमि स्पर्श मुद्रा से) अपनी दृढ़ता प्रकट करते हैं। तदुपरान्त उनका संकाश्य में स्वर्ग से अवतरण है। बीच की सीढ़ी पर बुद्ध हैं और इधर–उधर ब्रह्मा तथा इन्द्र दिखाई देते हैं। अगले दृश्य में अभय मुद्रा में भगवान् बुद्ध सारनाथ में प्रथम धर्मोपदेश कर रहे हैं। इसका संकेत स्तम्भ पर बना धर्मचक्र करता है और अन्त में कुशीनगर में उनके महापरिनिर्वाण (शरीर त्याग) की घटना है।

अगला शिलापट्ट भी भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण का प्रभावकारी चित्र प्रस्तुत करता है (00 एच0 8)। विशाल प्रभामण्डल से युक्त बुद्ध जी पलंग पर तकिए के सहारे लेटे हैं, कुछ व्यक्ति विभिन्न क्रियाओं से अपना शोक प्रकट कर रहे हैं। किसी ने अपने हाथ ऊपर तान लिए हैं, अन्य अपने हाथों से सिर पकड़े विवशता में हैं और तीसरे ने वस्त्र से संभवतः आँसू पोंछने के लिए अपना मुंह ढक रखा है। उनके चरणों की ओर तीन व्यक्ति हैं, जिनमें एक साधु महाकश्यप हैं। पलंग के नीचे की ओर तीन व्यक्तियों में से पहला वज्रपाणि है, जिसने शोक संतप्त हो वज्र को पृथ्वी पर रख दिया था। तीसरा ध्यानावस्थित व्यक्ति बुद्ध जी का अन्तिम शिष्य 'सुभद्र' है। उसका ब्राह्मण धर्म के त्रिदण्ड सम्प्रदाय से पुराना सम्बन्ध था

और रखे तिकोने दण्ड से ज्ञात होता है। महात्मा बुद्ध ने दो शाल–वृक्षों के बीच में शरीर त्याग किया था, इनमें से यहाँ केवल एक विद्यमान है। वृक्ष से एक गंधर्व फूलों की वर्षा भी कर रहा है।

अगले छोटे शिलापट्ट में ध्यान में आसीन बोधिसत्व प्रदर्शित है (46. 3231) इससे तत्कालीन बौद्ध कवि अश्वघोष के उस वाक्य का स्मरण होता है कि मोक्ष की प्राप्ति केवल साधुओं का एकाधिकार नहीं है, गृहस्थ भी संयम–नियम से इसे पा सकते हैं ('प्राप्तो गृहस्थैरपि मोक्ष–मार्गः[38]')।

माँट से मिली राजपुरुषों की मूर्तियाँ

अब हम मुख्य द्वार के समीप उस स्थान पर आ पहुंचे हैं, जहाँ दोनों ओर कुषाण वंशीय राजाओं की मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। इन्हें स्व. पं. राधाकृष्ण ने यहाँ से लगभग 10 मील दूर माँट नामक ग्राम के टोकरी अथवा इटोकरी स्थल से प्राप्त किया। संग्रहालय की मूर्तियों के संकलन में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। राजपुरुषों की मूर्तियों का निर्माण मथुरा कला शैली की निजी विशेषता थी।

विमकैडफाइसिस– (12. 215) सिंहासन पर आसीन कनिष्क के पूर्ववर्ती (?) विमतक्षम की यह मूर्ति बड़ी भव्य और प्रभावशाली रही होगी। लम्बे कोट, सलवार और जूतों पर कंशीदे का काम बहुत सुन्दर है। गोद में कोई बढ़िया रेशमी वस्त्र पड़ा है। इसकी सलवटें बड़ी कोमल हैं। जिस शान के साथ राजा बैठा है, उससे कुषाण राजाओं का प्रभाव अभिव्यक्त होता है और साथ ही सिक्कों में मिलने वाले विरुद 'सर्व लोग ईश्वर' की सार्थकता प्रकट होती है। दोनों पैरों के बीच में खुदे लेख से ज्ञात होता है कि इसके राज्यकाल में बक्पतिहुम (?) नामक व्यक्ति ने एक उद्यान, वापी और तड़ाग के साथ किसी देवकुल का निर्माण कराया। देवकुल से तात्पर्य या तो मंदिर से है अथवा उस वीथिका से, जिसमें देवों की मूर्तियां लगी थीं। यह स्मरणीय है कि कुषाण शासक अपने लिए देवपुत्र उपाधि का प्रयोग करते थे। इस दृष्टि से देवकुल का अभिप्राय उस स्थान से हो सकता है, जो देवपुत्रों (कुषाण राजाओं) की प्रतिमाओं का स्थान है। विम का समय 40 ई. से 78 ई. तक आंका जाता है। सिक्कों से ज्ञात होता है कि वह शैव था, क्योंकि उन पर नन्दी के साथ शिव की आकृति मिलती है और राजा को माहेश्वर बताया है। इस लेख में प्राप्त उसके नाम विमतक्षम से अनुमान लगता है कि कुषाण लोग ईरान की शक जाति के थे[39]।

कनिष्क– (12. 213 चित्र 26) विम के सामने उसके उत्तराधिकारी कनिष्क की मूर्ति है, जो कुषाण वंश का सबसे प्रतापी और अपने समय का एशिया में विख्यात शासक एवं साहित्य तथा कला का भी महान् संरक्षक था। उसके दरबार में अश्वघोष, पार्श्व, वसुमित्र, संघरक्षक आदि प्रमुख कवि, विद्वान् व दार्शनिक रहते थे। सुप्रसिद्ध रसायनविद् महायान सम्प्रदाय के आचार्य नागार्जुन को भी कनिष्क का प्रिय पात्र बताया जाता है। इसके समय में मथुरा तथा गांधार दोनों कला शैलियां उन्नति के शिखर पर पहुंच गईं। मथुरा ने जितनी ख्याति कनिष्क के समय अर्जित की उतनी इसे कभी न मिली। कुषाण शासन का यह एक प्रमुख केन्द्र था। बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति भी कनिष्क ने बुलाई थी। इस धर्म के प्रति अत्यन्त आदर तथा आश्रय भाव के कारण बौद्ध साहित्य में कनिष्क को दैवी शक्ति से युक्त बताया है[40]। उसकी देवपुत्र उपाधि महान् व्यक्तित्व की सूचक है। संक्षेप में कनिष्क का राज्यकाल मथुरा के लिए स्वर्णिम युग था।

इस मूर्ति में उसे लम्बा कोट, सलवार तथा भारी जूते पहने योद्धा के रूप में दिखाया है। दायां हाथ गदा थामे हैं, जिसमें मकर आदि कई अलंकार के चिन्ह हैं। उसके बाई ओर सुन्दर म्यान में तलवार है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सामने

तत्कालीन ब्राह्मी में लेख भी मिलता है, जिसके शब्द है– 'महाराजा राजा–तिराजा देव पुत्रो कनिष्को'। इस मूर्ति का निर्माण संभवतः उसके शासन के आरम्भ में ही हुआ होगा, क्योंकि इस प्रकार का पहनावा पहले ही प्रचलित था और उसके तथा बाद के सिक्कों में नहीं मिलता[41]।

चष्टन (12. 212) विम की मूर्ति के दाहिनी ओर चष्टन अथवा षष्टन की मूर्ति दिखती है। यह घुटने तक कोट और सलवार पहने है, कोट के किनारों पर कशीदाकारी दर्शनीय है। पेटी में कितने ही प्रकार के आलंकारिक प्रतीक बने हैं। उसकी बाईं ओर संभवतः तलवार भी रही होगी। गले में मनकों की माला है। रचना की दृष्टि से यह मूर्ति बड़ी सुन्दर और सुडौल है। चष्टन पश्चिमी भारत में शक, क्षत्रप शासन का जन्मदाता था और उसकी राजधानी उज्जैन में थी। मांट के देवकुल से इस मूर्ति के मिलने का अभिप्राय यह हो सकता है कि शक तथा कुषाणों में सौहार्दपूर्ण संबंध थे।

चष्टन की मूर्ति के सामने एक और राजकुमार की प्रतिमा (43.3085) है, जो गोकर्णेश्वर से प्राप्त हुई है। इसमें भी वही शैलीगत विशेषताएं हैं, जिनके बारे में ऊपर विचार किया जा चुका है। इस प्रकार के पहनावे को बृहत्संहिता में उदीच्य वेष माना है अर्थात् यह उत्तर भारत में अधिक प्रचलित था।

सूर्य प्रतिमाएं – सूर्य प्रतिमाएं इस वस्त्र परिधान से अधिक प्रभावित हुईं। प्राचीन मूर्तियाँ तो शक राजकुमार जैसी प्रतीत होती हैं। यह मूर्ति (12.269 चित्र 27) संग्रहालय की संभवतः प्राचीनतम सूर्य प्रतिमा है। इसका कशीदाकारी कोट, सलवार और ऊपर तक पहनने वाले जूते तथा बाएं हाथ की कृपाण चष्टन की मूर्ति से मिलती है। गले की माला सिर पर टोप और कानों में कुन्डल कंधे पर लटकते बाल, उकडू बैठने का ढंग और मूंछों से विदेशी राजपुरुष की प्रतिमा ज्ञात होती है। सिर के पीछे प्रभामण्डल, दायें हाथ के कमल और घोड़ों के रथ से अवश्य आभास होता है कि यह सूर्य की मूर्ति है। दूसरी प्रतिमा (61.16) भी इसी युग की है, तीसरी प्रतिमा (00 डी. 46) उत्तर कुषाण काल की है। इससे आभास मिलता है कि विदेशी तत्व धीरे–धीरे समाप्त हो रहे थे। वेश–भूषा कुछ भिन्न है, टोप नहीं है, मुखाकृति भारतीय लगती है और घोड़ों की संख्या दो से चार हो गई है।

बाईं ओर मुड़ने पर दोनों ओर उत्कीर्ण प्रतिमा में शक पूजक माला लिए हैं (00 सी 13)। इससे इस तथ्य का संकेत मिलता है कि विदेशी लोग भी भारतीय संस्कृति के प्रति आदरभाव प्रकट करते थे। इसके आगे दोनों ओर बनी एक और मूर्ति है (00 एफ 1) जिसमें स्त्री की आवक्ष आकृति घोड़े के शरीर से जुड़ी है उसके ऊपर एक सवार है। इस प्रकार की जुड़ी हुई आकृतियां किन्नर अथवा किन्नरियां कहलाती थीं[42]।

सामने दीवाल के सहारे एक बड़ा वेदिक स्तम्भ है; जिस पर छाता लिए स्त्री की भग्न मूर्ति है। ऊपर बड़ा रोचक दृश्य है; जिसमें किसी पशुचिकित्सालय का नेत्र कक्ष दिखाया है। बन्दर चिकित्सक का कार्य कर रहे हैं और उनके गले में शल्य–क्रिया के लिए कुछ पेटी सी दिखाई देती है। एक बन्दर तोते और दूसरा यक्ष की आंख देख रहा है[43]। कला में इस प्रकार की कल्पना अस्वाभाविक होने के साथ ही मौलिक है। संभवतः प्राचीन समय में इस प्रकार के चिकित्सा केन्द्र रहे हों? दाहिनी ओर किसी तोरण का कोनी भाग अथवा शालभंजिका (00 एम 4) जिसमें एक युवती अशोक वृक्ष की शाखा पकड़ खड़ी हैं। इस प्रकार की कोनी (ब्रैकेट) तोरण की द्वारशाखा को धरन के साथ जोड़ती थी। एक अन्य स्त्री मूर्ति (00 ए 6) अपनी केश–सज्जा तथा आभूषणों के लिए दर्शनीय है।

पीछे दीवाल के सहारे बीच में एक पटिया पर दो श्रृंगार के दृश्य हैं (12.186 चित्र 28) इनमें ऊपर वाले दृश्य में वेणी प्रसाधन किया जा रहा है। पुरुष स्त्री के बाल संभाल रहा है और स्त्री दर्पण लिये है। दासी के पास श्रृंगार पेटिका है। (उत्पल माला धारिणी कन्या) नीचे फलक में नायिका शीशे में देखती हुई आभूषण पहन रही है। (मन्डन दर्पण) दर्पण एक बौने के हाथ में है। नायिका के बाईं ओर एक व्यक्ति प्रसाधन सामग्री लिए खड़ा है। डा. अग्रवाल का मत है कि ये अन्तःपुर के दृश्य हैं और तत्कालीन कवि तथा नाटककार महाकवि अश्वघोष के काव्य सौन्दरानन्द में वर्णित नन्द और सुन्दरी की प्रणयलीला प्रदर्शित करते हैं[44]। सामने एक देवी की प्रतिमा है (00 एफ. 2) जिससे पांच अन्य स्त्री आकृतियां निकल रही हैं। यह देवता का विराट रूप प्रदर्शन हो सकता है वैसे इसे षष्ठी भी माना गया है[45]। इसका पृष्ठ भाग बहुत ही सुन्दर ढंग से अलंकृत है, जिसमें अशोक वृक्ष के ऊपर एक गिलहरी चढ़ रही है। पत्तियों की बनावट वस्तुतः सराहनीय है (चित्र 29), वीथिका 6 के द्वार पर स्तम्भ में (57. 4447) कमल तथा अशोक की बेलें बड़ी कुशलता से काटी गई हैं।

नाग वीथिका– इस छोटी वीथिका (संख्या 6) में नाग मूर्तियां प्रदर्शित हैं। नाग पूजा भारत में अति प्राचीन काल से होती आई है और प्रायः सभी सम्प्रदायों के देवता अथवा महापुरुषों के साथ नागों का संबंध रहा है। नागों को देवता के रूप में तो पूजा ही जाता था, किन्तु संभव है यह कोई बलिष्ठ जाति रही जिनका यथासमय दमन किया गया। श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को दण्ड दिया तो बुद्ध ने अपलाल को। अभी हाल में सोंख उत्खनन से स्वतन्त्र नाग मन्दिर के अवशेष तथा श्रेष्ठ नाग कलाकृतियां मिली हैं।

बीच में प्रदर्शित मूर्ति (00.सी. 13) में नाग देवता फणों से युक्त खड़े हैं। दाहिना हाथ अभय मुद्रा में उठा था और बाएं में चषक है। इसके पृष्ठ भाग में उत्कीर्ण ब्राह्मी लेख से ज्ञात होता है कि हुविष्क के राज्यकाल (शक संवत् 40) में सेनहस्ति तथा भोनुक द्वारा इसकी स्थापना हुई। इसमें मूर्ति को भगवान् नाग कहा है। यह छड़गांव से मिली।

बलराम की मूर्तियां भी नाग मूर्तियों के समान ही बनाई जाती थीं, क्योंकि उन्हें शेषनाग का अवतार माना जाता है। केवल अन्तर इतना है कि बलराम मूर्तियों में प्रायः वनमाला, सिंहध्वज तथा एक कान में कुन्डल होता है। लखनऊ संग्रहालय में मथुरा से मिली सबसे प्राचीन मूर्ति में बलराम मूसल तथा हल लिए हैं। किन्तु कुषाण काल में मदिरापात्र तथा वनमाला मुख्य विशेषता रह गई थी।

कभी–कभी नाग मूर्तियों के हाथ में अमृत घट भी प्राप्त होता है। राल से मिली इस प्रतिमा में (12. 221) नाग के साथ दो नागी भी हैं और अमृत घट।

इसके निचले भाग के अभिलेख (जो अब पृथक् रखा है) से सूचना मिलती है कि इस भूमिनाग मूर्ति की स्थापना महाराज राजतिराज शाही कनिष्क के आंठवें राज्य संवत् में हुई। बाद में (गुप्तकाल) भी नाग मूर्तियां बनती रहीं।

यह भी उल्लेखनीय है कि नाग के साथ इसके शत्रु गरुड़ की मूर्तियां भी मथुरा कला में बनीं। इस पटिया में (41.2915) गरुड़ एक नागी का अपहरण किए जा रहा है। दूसरी मूर्ति में (40. 2889) गरुड़ ने नाग को जकड़ रखा है।

इस वीथिका को छोड़ते हुए दर्शक बाईं ओर एक विशाल स्तम्भ अथवा द्वारशाखा (57.4446) देखता है, जिसमें दोनों ओर आठ कक्ष बने हैं। सबसे ऊपरी कक्ष में भगवान बुद्ध दो उपासकों के साथ अभयमुद्रा में बैठे हैं और शेष कक्षों में स्त्री व पुरुष पूजन के हेतु माला लिए खड़े हैं, दूसरी ओर यह अधिक सुरक्षित होने से कला की श्रेष्ठता के यथार्थ परिचायक हैं। मुख्य वीथिका में हमें पत्थर

के विशाल कटोरे दीखते हैं जो भगवान् बुद्ध के भिक्षा पात्र के प्रतीक हैं। अनुमान है कि इन्हें भिक्षुओं की भिक्षा एकत्र करने के लिये मठ अथवा विहारों के सामने रख दिया जाता था। बीच में प्रदर्शित मनुष्य मस्तक पर रखा छोटा कटोरा ब्राह्मी लेख से खुदा है, जिससे सूचना मिलती है कि इसकी स्थापना स्वर्णकार विहार में हुई।

ब्राह्मण मूर्तियां

सातवीं वीथिका में प्रदर्शन कक्ष संख्या 6 में ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों के आरंभिक स्वरूप का परिचय मिलता है।

विष्णु– इनकी आकृतियाँ चतुर्भुजी हैं (15. 956) हाथ में गदा, अभय, चक्र और अमृत घट है। ललितासन में बैठने की शैली उल्लेखनीय है (39. 2858) अष्टभुजी विष्णु की भी कुछ मूर्तियाँ मिली हैं। (15.1010)।

बलराम – लगभग वहीं विशेषतायें हैं, जिन्हें बताया जा चुका है।

चतुर्भुजी रूप में गदा तथा सिंहध्वज दर्शनीय है (39.2856)।

रति और कामदेव – फलक संख्या (19. 1563) कामदेव तथा उसकी पत्नी रति का प्रदर्शन करता है उसके हाथ में लम्बी छड़ी संभवतः ईख का धनुष (इक्षुकोदण्ड) है, जो कामदेव की मुख्य विशेषता है[46]।

दुर्गा (महिषासुरमर्दिनी)– महिषासुर को मारती दुर्गा की मूर्तियाँ इस काल में बहुत लोकप्रिय थीं। यह चतुर्भुजी (33.2317) और षड्भुजी (42.2947) मिलती है।

गज लक्ष्मी – दो हाथियों के झरनों से स्नान करती हुई लक्ष्मी की मूर्ति (15.985) शुंगकाल में बनने लगी थी और कुषाण काल में भी उसका प्रचलन रहा।

मातृका– मातृ देवियों की मूर्तियां भी इस काल में बहुत बनीं (33. 2331)। कभी कभी इनके मुख पशु अथवा पक्षी के समान बने होते हैं। शिशुओं की संरक्षक होने के कारण इनके साथ अधिकतर एक बच्चा होता है।

शिव–पार्वती– मूर्ति संख्या (34. 2495) में शिव व पार्वती वाहन नन्दी के साथ खड़े हैं।

अर्द्धनारीश्वर– (15.874) यह है पुरुष तथा स्त्री शक्तियों का संयोग। जिसमें आधा भाग शिव का और आधा भाग पार्वती का बनाया जाता है। अतः एक ही स्तन प्रदर्शित है। अर्धनारीश्वर के एक और रूप (15.800) में वह वाहन के साथ हैं। स्त्री वाले भाग में पैर में आभूषण हैं।

इसके अतिरिक्त एक और फलक है जिसमें अर्धनारीश्वर, विष्णु, गजलक्ष्मी तथा कुबेर बने हैं। इससे धर्मों की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत मिलता है (34.2520)।

अवतार (?) अवतार की परम्परा को संभवतः इसी युग में मान्यता मिल चुकी थी। इस मूर्ति में (65.15) पृथ्वी को उठाते हुए वाराह की प्रतिमा है[47]।

प्रदर्शन कक्ष के बाहर दीवाल के सहारे पीठिका पर ब्राह्मण धर्म की कुछ अन्य प्रतिमायें भी हैं, जैसे बलराम का धड़ (17.1325), कार्तिकेय (42.2949 चित्र 30) जिसकी मुख्य विशेषता यह है कि इस लेख में भी कार्तिकेय की प्रतिमा कहा गया है कंकाली टीले से मिली यह मूर्ति शक संवत् 1 (89 ई.) में बनी।

अग्नि की मूर्तियों में (39.2880) लपटों का प्रभामंडल, बायें हाथ में धृत–पात्र और तुंदिल शरीर दर्शनीय है।

इसके उपरान्त एक धड़ (00 ई. 24) दीखता है, जिसके वज्र से अनुमान लगाया जा सकता

कि संभवतः यह देवराज इन्द्र हैं। अगली प्रतिमा कुबेर की है (48.3232) जिसके हाथ में चषक और बिजौरा फल है। लेख में इसे यक्ष गुह्य कहा है। मुकुट पहने वृक्ष के नीचे खड़े इस पुरुष (00.सी. 18) के एक हाथ में थैली है और दूसरे में अक्षपाश होने से इसे यक्ष मूर्ति मान सकते हैं[48]। वीथिका सात के अंत में एक प्रदर्शन कक्ष है, जिसमें विभिन्न स्त्री व पुरुष मस्तक हैं और उनसे तत्कालीन शिरोवस्त्र तथा केश–वन्यास का परिचय मिलता है।

बाईं ओर लगभग दस कदम चलने पर लकड़ी की वेष्टनी के अन्दर एक मूर्ति है, जिससे कुछ अन्य प्रतिमायें निकल रही हैं (14.392–395 चित्र 31) मुकुट, गदा, वनमाला और शंख लिये यह विष्णु मूर्ति बड़ी दुर्लभ है। वस्तुतः यह विष्णु का चर्तुव्यूह रूप है, जिसका बाद में अधिक प्रचार हुआ। इसे संग्रहालय के सप्तसमुद्री कुए से ही प्राप्त किया गया।[49]।

विष्णु मूर्ति के सामने दीवाल के सहारे अर्द्ध वृत्ताकार विशाल प्रस्तर खण्ड दीखता है, जो किसी छत्र का अवशिष्ट भाग है (72.5 चित्र 32) इसकी वह शोभा पट्टी विशेष दर्शनीय है, जिसमें इन मांगलिक चिन्हों का अंकन है : कमल, चक्र, मंगल कलश, निधि पात्र, पूर्ण कमल, भिक्षा पात्र, स्वास्तिक, शंख निधि (शंख से मुद्राएं निकलती दिखाई है), पूर्ण कमल और अन्त में हस्तिनख प्रणाली से उत्तीर्ण प्रभा मंडल। पूरे छत्र में विभिन्न 12 शुभ चिन्ह होंगें और प्रति तीन चिन्हों के पश्चात् एक पूर्ण विकसित कमल था। इस प्रकार कुल 16 मंगल चिन्ह इस शोभा पट्टी में उत्कीर्ण थे, मथुरा से अब तक प्राप्त छत्रों में यह सर्वाधिक कलात्मक है।

वेदिका स्तम्भ

कुषाणकाल की कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने वे वेदिका स्तम्भ हैं, जिनमें सुकुमार रमणियों को अत्यन्त छटा तथा आकर्षण के साथ बनाया गया है। बहुधा एक ओर किसी न किसी क्रिया कलाप में संलग्न स्त्री है और दूसरी ओर कोई अन्य दृश्य अंकित होता है। ये स्त्रियाँ प्रायः निर्वस्त्र हैं अथवा ऐसे पारदर्शक वस्त्र पहने हैं, जिनसे शरीर के अवयव स्पष्ट दीख पड़ते हैं। इस प्रकार की नग्न आकृतियाँ कला में शिल्पी ने क्यों बनाई इस संबंध में विद्वानों में विभिन्न मत हैं। कुछ इन्हें यक्षी मानते हैं, कुछ वन देवता या वृक्षिका बताते हैं और अन्य अप्सरायें या नर्तकी की संज्ञा देते हैं। धार्मिक स्थानों के बाहर प्राप्त होने के कारण यह भी व्याख्या की जाती है कि ये संसार की लीला प्रदर्शित करती हैं। उनके प्रति अनासक्त होकर ही व्यक्ति कल्याण लाभ कर सकता है। यह भी संभव हो सकता है कि ये तपस्या भंग करने वाले कामदेव की स्त्री सेना की सदस्या हों अथवा नीलांजना अप्सरा का प्रतिनिधित्व करती हों। जो भी हो नग्न स्त्री शक्ति का अंकन हमें अति प्राचीन मृण्मूर्तियों में तो मिलता ही है साथ ही मोहेनजोदड़ो से प्राप्त नर्तकी की कांस्य आकृति नग्न ही है। यह भी सम्भव है कि इनका कोई धार्मिक महत्व न हो और तत्कालीन समाज की अभिरुचि अभिव्यक्त करती हों। दाता अथवा शिल्पी की निजी रुझान के कारण भी ये बनी ही है साथ ही मोहनजोदड़ो से प्राप्त नर्तकी की कांस्य आकृति नग्न ही है। यह भी सम्भव है कि इनका कोई धार्मिक महत्व न हो और तत्कालीन समाज की अभिरुचि अभिव्यक्त करती हों। दाता अथवा शिल्पी की निजी रुझान के कारण भी ये बनी होंगी और इनसे उस मंदिर स्तूप अथवा अन्य किसी धार्मिक स्थान के प्रति जनता में आकर्षण बढ़ा होगा[50]।

वीथिका संख्या 7 व 8 में कुछ सुन्दर मूर्तियां प्रदर्शित हैं। बाईं ओर की पंक्ति में (33.2345) एक तरुणी अशोक वृक्ष के तने पर पैर से आघात करती दिखाई गई है। मान्यता यह थी कि जब

कोई षोडशी अशोक वृक्ष को पैर से मारती तब वह पुष्पित होता था। इसका जूड़ा तथा वृक्ष की पत्तियां बड़ी मनोहर हैं। इसी पंक्ति में दो स्त्रियां तोते से खेल रही हैं। शुक क्रीड़ा उस समय स्त्रियों का प्रिय मनोविनोद था।

दांयी पंक्ति में (00. जे. 5) प्रथम वेदिका स्तम्भ भूतेश्वर से मिला है। इसमें एक सुन्दरी गुह्यक अथवा बौने पर खड़ी दर्पण निहारती हुई कोई अलंकार पहन रही है। केशविन्यास कला पूर्ण है। कर्धनी चन्द्रावली प्रकार की है। टखने के नीचे से ज्ञात होता है कि यह नग्न नहीं अपितु झीना वस्त्र पहने है। शरीर के सभी अवयव सुडौल और आकर्षक हैं। पैरों के नीचे मनुष्याकृति बने होने के कारण इन्हें यक्षिणी माना जा सकता है क्योंकि यक्षेश्वर कुबेर को नर वाहन कहा है। ऊपर छज्जे पर दो व्यक्ति हैं, जिनमें से एक उपहार भेंट कर रहा है, किन्तु दूसरा स्वीकार हीं नहीं करना चाहता। स्तम्भ के दूसरी ओर तीन कक्षों में कुछ घटनाएं हैं। सबसे नीचे संभवतः व्याघ्री जातक का दृश्य है, जिसके अनुसार बोधिसत्व ने भूखी व्याघ्री के लिये अपने शरीर तक को अर्पित कर दिया था[51]। सबसे ऊपर दो अनुचरों के साथ बुद्ध दिखाई देते हैं। इस पंक्ति में (11.152) एक स्त्री को नृत्य मुद्रा में प्रस्तुत करता है, किन्तु उसके पास तलवार भी है। संभव है उस समय खड्ग नृत्य प्रचलित हो। ऐसी ही एक आकृति पंक्ति में अन्य स्तम्भ पर बनी है (00 जे. 63)।

बांयी पंक्ति में पहली यक्षी (00 जे. 64) एक वृक्ष के नीचे खड़ी दर्पण लिये शृंगार में रत है। दूसरे स्तम्भ पर युवती (17.1271) हार पहन रही है। स्तम्भों के ऊपर एक विशाल उष्णीष है (57.4448) इसमें ताल पत्र तथा आवक्ष दम्पती आकृतियाँ हैं।

वीथिका 7–8 के बीच में (सं. 75.32) एक छत्र है जो किसी स्तूप अथवा देवता के ऊपर रहा होगा। इसके नीचे प्रदर्शित मूर्तियाँ हैं :– बुद्ध की सुन्दर प्रतिमा (00 ए. 4), एवं गान्धार प्रभाव से युक्त बुद्ध आवक्ष प्रतिमा। (501–27) शाल मजिका सौख नामक टीले से प्राप्त हुई जो कुषाण कालीन कला की अनुपम देन हैं।

इसके पश्चात् कुछ और वेदिका स्तम्भ दीखते हैं। दहिनी पंक्ति की कलाकृतियाँ कला–जगत में सुप्रसिद्ध हैं। जे. 4 (चित्र 33) एक सदम्स्नाता रमणी स्नान के पश्चात् वस्त्र परिधान कर रही है। शरीर की बनावट, आरोह और अवरोह वस्तुतः इतने रमणीय हैं कि इस प्रतिमा में स्पंदन सा प्रदान करते हैं। छज्जे के ऊपर एक बलिष्ठ पुरुष एक किशोर वंशीवादक को संभवतः किसी गोष्ठी में लिये जा रहा है। स्तम्भ के पीछे वेसन्तर जातक की निम्नलिखित कहानी अंकित है। राजकुमार वेसन्तर का विवाह माधुरी से हुआ और उनके जाली तथा कृष्णाजिना दो संतान हुईं। राज कुमार के पास एक अद्भुत हाथी था, जिसमें वृष्टि करने की क्षमता थी। किन्तु उसे राजकुमार ने कलिंग देश के अकाल को दूर करने के लिये दान में दे दिया। इससे राजधानी के लोग रुष्ट हो गए और उन्होंने राजकुमार को निष्कासित कर दिया। बेसन्तर अपने परिवार के साथ जंगल को चल दिया और वहाँ उसने बड़ा दान व तपस्या की। उसने रथ व चार घोड़े तो दान में दिये ही, एक बार अपने बच्चे को भी जूजक नामक ब्राह्मण को दान में दे डाला। इस स्तम्भ पर सबसे ऊपर वाले दृश्य में वेसन्तर द्वारा बच्चों का दान प्रदर्शित किया है। बीच में वह बिना किसी सोच–विचार के उन्हें ब्राह्मण को दे रहा है और सबसे नीचे उसकी पत्नी को कुटिया की ओर आते हुए दिखाया है। पत्नी की अनुपस्थिति में यह सब हुआ था[52]।

जे. 12 : इस स्तम्भ पर उत्कीर्ण नायिका के शरीर में सौंदर्य तो है ही, किन्तु सबसे अधिक आकर्षण है; इसकी मधुर मुस्कान, जिसने पत्थर में

भी प्राणों को संचालित कर दिया है। ऊपर एक व्यक्ति विह्वल दशा में अपने दाहिने हाथ पर सिर रखे है। कौन जानता है कि इस सुन्दरी को देखकर ही वह काम बाण से व्यथित हो उठा हो?

11. 151 (चित्र 34)– इस पंक्ति के अन्तिम स्तम्भ में एक स्त्री अपने दाहिने हाथ में अंगूर (द्राक्षा) अथवा छोटी आमियों के गुच्छे (आम्रमंजरी) तथा बाएं हाथ पर एक ढका पात्र लिये है और ऊपर से झांकते प्रेमासक्त युगल को दे रही है। इसके शरीर सौष्ठव के साथ ही आभूषण भी दर्शनीय हैं पीछे की ओर एकशृंग अथवा शृष्यशृंग का कथानक अंकित है, इसकी विभिन्न रूपों में कथा मिलती है और महाभारत में बड़े विस्तार व रोचकता के साथ लिखी गई है। एक शृंग विभांडक मुनि के पुत्र थे और मस्तक पर सींग होने के कारण इनका नाम एक शृंग पड़ गया। इस मुनि कुमार ने कभी कोई स्त्री नहीं देखी थी। एक बार राजा लोमपाद के राज्य में महान् दुर्भिक्ष पड़ा। ब्राह्मणों ने परामर्श दिया कि यदि एक शृंग राजधानी में आ जाय तो वर्षा आरम्भ हो सकती है। राजा ने तुरन्त ही राजकुमारी तथा अन्य सुन्दर स्त्रियों को वन में भेजा। सबसे ऊपर के दृश्य में ये स्त्रियां नाव से गन्तव्य तक पहुंच रही हैं। दूसरे दृश्य में मुनि विभांडक की अनुपस्थिति में गानवाद्य के द्वारा ऋषि कुमार को लुभाने का प्रयत्न किया जा रहा है और अन्त में एक शृंग प्रेमपाश में बंधे दीखते हैं। इसके आधे के स्तम्भ में भी ऋषि कुमार को स्त्री संसर्ग के पश्चात उद्विग्न स्थिति में दिखाया गया है (00 जे. 7 चित्र 35) भाव प्रदर्शन का यह अनूठा उदाहरण है[53]। इसके दूसरी ओर बोधि वृक्ष का पूजन और चिड़ियों की लड़ाई (बटेर बाजी) उस समय के आमोद प्रिय जीवन का संकेत करता है[54]। शृष्य शृंग की दाई ओर स्तम्भ भाग पर एक स्त्री बड़े कलात्मक केशविन्यास के साथ नीला कमल लिये है (11. 154) और दूसरी ओर सारनाथ की गंध कुटी का प्रदर्शन है जिसमें महात्मा बुद्ध ध्यान किया करते थे।

कुछ अन्य स्त्री आकृतियां फूल तोड़ते हुए दिखाई गई हैं (00 जे. 57, 00 जे. 9, 00जे. 58)। इन्हें पुष्प–प्रचायिका, अशोक प्रचायिका, पुष्प भंजिका या शाल भंजिका कहते थे[55]। स्तम्भ पंक्तियों के अन्त में छोटे सिंह शीर्ष के इधर–उधर दो आकृतियां और दर्शनीय हैं। दाई ओर एक स्त्री सुन्दर चम्पा के फूलों के नीचे शृंगार अथवा पूजा की पेटी लिये खड़ी है और उसके दाहिने हाथ में धूप–दान। (14. 369 चित्र 36) बांयी ओर के स्तम्भ में युवती (18. 1509 चित्र 37) स्नान के पश्चात् अपने बाल निचोड़ रही है। उससे टपकते हुए जलबिन्दुओं को हंस मोती समझ कर चुग रहा है। किन्तु सबसे विचित्र है इसकी स्कर्टनुमा पोशाक जिसे योरोप की आधुनिक महिलाओं का फैशन माना जाता है।

कुछ छोटे कुषाणकालीन अवशेष इस वीथिका के प्रदर्शन कक्ष 7 में लगे हैं जिनमें वसुधारा (27–28. 1695) ब्रह्मा (14.382) लक्ष्मी और हारीति के साथ कुबेर (00 सी. 30), नृत्य तथा भोज उत्सव (14. 406) और वृक्ष के नीचे वंशी बजाती हुई रमणी (00 एफ. 17) उल्लेखनीय है[56]।

संक्रमण काल

कुषाण राजा वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् दूसरी शताब्दी ई. के अन्त में कुषाण सत्ता छिन्न भिन्न हो गई और लगभग एक शताब्दी तक देश में अराजकता की सी स्थिति रही। कुषाण युग के बाद और गुप्त युग के पूर्व के इस समय को कला की दृष्टि से संक्रमण युग कहा जाता है। इसमें कुषाण कालीन विशेषताएं बनी तो रहीं, किन्तु उनमें सुधार के लक्षण दिखाई देते हैं। विदेशी तत्व धूमिल होते जाते हैं। इस समय की कुछ प्रतिमाएं कुषाण तथा गुप्त युगीन वीथिकाओं में एक ओर लगी हुई हैं।

□□

गुप्तकालीन मूर्ति कला

सामान्य विशेषताएं : गुप्त शासन के उदय से (319 ई.) ही जीवन की प्रत्येक दिशा में पुनर्जागरण आरम्भ हो गया। इस युग को भारतीय इतिहास में स्वर्णिम काल कहा जाता है और कला की दृष्टि से भी इस तथ्य की सत्यता सिद्ध होती है। कला की विदेशी विधाओं का या तो परित्याग कर दिया गया अथवा उनका भारतीयकरण कर आत्मसात कर लिया। पुनर्जागरण के इस युग में नये आदर्श और नये मापदण्ड स्थापित हुए। सौंदर्य की व्याख्या में भी परिवर्तन हुआ। तत्कालीन प्रसिद्ध कवि कालिदास ने संकेत दिया कि रूप पाप वृत्ति के लिये नहीं है (न रूपंपाप वृत्तये) इस आदर्श ने आकृतियों के निर्माण को बहुत अधिक प्रभावित किया। फलतः स्त्री आकृतियों का नग्न तथा कामुक प्रदर्शन अब संयम व मर्यादा में बंध गया। शिल्पी ने अब बाह्य स्वरूप के साथ आन्तरिक भावनाओं के प्रदर्शन पर अधिक बल दिया। महापुरुषों की मूर्तियां ऊर्ध्वगामी रूप में एक विचित्र आनन्द सागर में डूबी दिखाई देती हैं। कुषाणकालीन बोधिसत्व प्रतिमा का लक्ष्य था समाज कल्याण के लिये मुस्कराकर सभी कष्टों को सहन करना किन्तु अब गुप्त युग में बुद्ध मूर्ति का प्रयोजन था 'अनुत्तर ज्ञानावाप्ति' अर्थात् दिव्यज्ञान की प्राप्ति। अतः कुषाण–कालीन बुद्ध मुख का स्मित भाव गुप्तकाल में शांतभाव में परिवर्तित हो गया। विस्फारित नेत्र अब ध्यान में अर्द्ध–मुकलित हैं। मुख दिव्यज्ञान की छटा से आच्छादित प्रतीत होता है। शरीर युवावस्था से पूर्ण और शक्ति से भरा है। मस्तक के पीछे प्रभामण्डल अनेक प्रकार की उत्कीर्ण पट्टियों से अलंकृत है[57]। इससे मूर्तियां बहुत अधिक खिल उठी हैं। कुषाण काल का भारी मोटा वस्त्र अब हलका व झीना है। बुद्ध जी के शरीर पर दोनों कंधों को ढकती हुई संघाटी है किन्तु उसकी चुन्नटें बड़ी सुन्दर और लुभावनी हैं। बाल घुंघराले हैं और कान, कंधे तक विशाल। बाहें भी लम्बी हैं। यह सब महा–पुरुषों के लक्षण माने जाते हैं। मूर्तियों में वनस्पति अथवा पशुओं का अंकन कम है और प्रधान आकृति के साथ उपासक अथवा पार्श्वचर भी बहुत छोटे हैं। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि अब सौंदर्य को आध्यात्म के साथ समन्वित कर दिया गया। अतः गुप्त–कालीन सौंदर्य साधना अधोगामी न होकर ऊर्ध्वगामी है।

बुद्धमूर्ति – वीथिका 9 में प्रवेश करते ही सामने भगवान् बुद्ध की प्रसिद्ध मूर्ति (00.ए. 5 चित्र 38) प्रदर्शित है। यह कचहरी के समीप जमालपुर टीले से मिली। भारतीयकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में यह मानी जाती है। गुप्तयुग के किसी श्रेष्ठ शिल्पी ने बड़े मनोयोग से इसकी रचना की होगी। अतः ऊपर बताई सभी विशेषताएं इसमें समाहित हैं। कमल के समान नेत्र, सुन्दर घुंघराले बाल, लम्बे कान, झीनी पारदर्शक उभयांसिक संघाटी, अनेक पटों से युक्त चारों दिशाओं में ज्ञान के प्रकाश की किरणों को विखेरता अलंकृत प्रभामण्डल और सबसे महत्वपूर्ण है मूर्ति का ध्यान भाव। बुद्धत्व की ज्ञानाग्नि में समस्त विकारों के भस्मीभूत होने पर दिव्यालोक से मुख–मण्डल आच्छादित हो उठा है। संस्थापक यशदिन्न का लोकोत्तर ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य इस मूर्ति की स्थापना से अवश्य पूर्ण हुआ होगा।

यहां यह स्मरणीय है कि इतनी श्रेष्ठ प्रतिमा अकस्मात् बन कर तैयार नहीं हुई अपितु इसके निर्माण की पृष्ठभूमि में सैकड़ों वर्षों की तपस्या, श्रम और शिल्पियों का अनुभव था। विकास की यह परम्परा वीथिका में बाईं ओर प्रदर्शित मूर्तियों को क्रम पूर्वक देखने से स्पष्ट हो जाती है। सर्वप्रथम पूर्व कुषाणकाल की मूर्ति, तत्पश्चात् पूर्ण कुषाण की, पुनः कुषाण एवं गुप्त काल के संक्रमण की और गुप्त काल की बुद्ध मूर्तियां यहां प्रदर्शित हैं। वीथिका से बाहर दो विशाल मस्तक हैं। पहला (49. 3510 चित्र 39) बुद्ध जी का सुन्दर सिर है जो गुप्त काल की श्रेष्ठ रचना है। दूसरा मस्तक (00.B.61) संभवतः तीर्थंकर का है। इससे मूर्ति की विशालता का अनुमान लगाकर दर्शक स्तब्ध रह जाता है।

देवियां– दो मस्तकों के उपरान्त अपने बाईं ओर (वीथिका 10 में) भ्रमण आरम्भ रखते हुए हमें दीवाल के सहारे कुषाण व गुप्त काल के बीच संक्रमण युग तथा गुप्त युग की देवियों की प्रतिमाएं दीखती हैं। सर्वप्रथम प्रतिमा स्वामी कार्तिकेय की शक्ति कौमारी का अधोभाग है (10.104) इसके आभूषण, स्कर्ट जैसा परिधान और वाहन मोर दर्शनीय है। देवी मूर्तियों में प्रदर्शन कक्ष– ६ में मस्तक गुप्त काल का श्रेष्ठ नमूना है (12. 261 चित्र 040) सिर के ऊपर की माला से अनुमान लगता है कि यह महिषासुरमर्दिनी का मस्तक है क्योंकि देवी ने दैत्य को मारकर स्वयं ही माला धारण की थी[58]। कुछ अन्य मूर्तियों से इसकी पुष्टि होती है। दीवाल के सहारे स्वतंत्र रूप से प्रदर्शित एक स्त्री प्रतिमा संभवतः नदी देवता या शाल–भंजिका है। इसका तरंगित शरीर, सुडौल आकृति व आभूषण बहुत आकर्षक है (54.3810 चित्र 41)। इसी वीथिका के दूसरी ओर चलते हुए दर्शक को दो स्तम्भों (00 आर. 35 और 00 आर. 36) में पूर्णकलश, लता तथा घण्टावली आदि प्रतीक दिखाई देते हैं।

परम भागवत होते हुए भी गुप्त शासक अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। इसका आभास बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण तीनों धर्मों की उपलब्ध सामग्री से मिलता है। राजाश्रय प्राप्त होने से ब्राह्मण धर्म स्वभावतः ही लोकप्रिय था। त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव को दूसरे देवताओं की अपेक्षा अधिक मान्यता प्राप्त हुई। किन्तु कला में ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) का अंकन उपेक्षित है। विष्णु (पालक) व शिव (संहारक) की प्रतिमाएं बहुल संख्या में मिलती हैं।

साहित्य और कला दोनों से यह स्पष्ट होता है कि धर्मों में पारस्परिक ईर्ष्या भाव न था और समन्वय पर अधिक बल दिया जाता था। कालिदास का यह वाक्य तत्कालीन धार्मिक समन्वय वाली प्रवृत्तियों को समझने में सहायक है 'एकैव मूर्तिस्त्रिविधा भिदेसा' अर्थात् एक ईश्वर ही विभिन्न स्वरूपों में विभक्त है[59]।

विष्णु – स्तम्भों के पश्चात हम पहले देखे हुए विशाल तीर्थंकर मस्तक के समीप ही विष्णु की प्रतिमा (59.438) का अवलोकन करते है। इस समय की विष्णु मूर्ति की सामान्य विशेषताएं हैं, ऊंचा अलंकृत किरीट अथवा मुकुट, घुटने तक आती हुई वैजयन्तीमाला, यज्ञोपवीत कभी कभी छोटा जाघिया तथा यदि हाथ सुरक्षित हैं तो उनमें विभिन्न आयुध। यह बहुधा चतुर्भुजी हैं। दीवाल के सहारे प्रदर्शित मूर्ति में विष्णु नृसिंह–वराह–विष्णु रूप में है (34.2525) अर्थात् इनमें तीन मस्तक हैं। एक सिंहाकृति नृसिंह का, दूसरा वराह का और बीच में मानवाकृति स्वयं भगवान् विष्णु का। इनका मस्तक अलंकृत किरीट से युक्त है जिसमें दो सिंहों के मुख से मुक्ता जाल निकल रहे हैं ('सिंहस्योद्गीर्ण मौक्तिकजाल') वैजयन्तीमाला और भुजबन्द भी उल्लेखनीय हैं[60]।

विश्वरूप विष्णु – कृष्ण बलराम वीथिका में (42.–43. 2989) में विष्णु के विराट अथवा विश्वरूप के दर्शन होते हैं। जिसका विशद् वर्णन भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में मिलता है। तदनुसार बहुत सी

देव आकृतियाँ मस्तक के पीछे मण्डल में उत्कीर्ण हैं और प्रधान मूर्ति का मुख सामने है। विश्वरूप प्रदर्शन गुप्त काल का रोचक विषय था। दूसरा शिलापट्ट (54.3837) भी विश्वरूप विष्णु की पार्श्व शाखा है। इसमें रुद्र का विस्फारित मुख विशिष्ट है।

सिर तथा पैर विहीन आकृति (50.3532 चित्र 42) गुप्त काल की बहुत ही सुन्दर कृति है। इसकी शरीर रचना बड़ी कलात्मक है और वस्त्र विन्यास सूक्ष्म। कंधे पर लटकते हुए घुंघराले बाल भी मनोहर हैं। गुप्त युगीन आभूषणों के अध्ययन के लिए भी यह महत्वपूर्ण है। पहले आभूषण को एकावली कह सकते हैं जो बड़े मोतियों की माला है। चन्द्रलेखा की आकृति वाला दूसरा आभूषण है चन्द्रहार जिसमें अनेक रत्न व मणि जड़े जाते थे। तीसरे अलंकार में मकर के दो मुखों से मोतियों की लड़ियाँ निकल रही हैं अतः इसे मकरी कहा जा सकता है। कर्धनी भी कम उल्लेखनीय नहीं है इसमें मकर तथा अन्य प्रतीक हैं। घुटनों के नीचे तक आती हुई वैजयन्ती माला के अवशेषों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मूर्ति विष्णु ही की थी।

श्रीकृष्ण की जीवन घटनाएं– विष्णु के अवतार और विशेष रूप से कृष्ण लीलाओं का अंकन गुप्त शिल्पी को अधिक प्रिय था। दीवाल के सहारे यह शिलापट्ट पर श्री कृष्ण के जन्म का दृश्य अंकित है इस मूर्ति सं. १७.१३४४ में वसुदेव शिशु कृष्ण को अपने सिर पर टोकरी में रखकर यमुना का पार करते हुए दिखाया है यमुना में जल के जीव जन्तु एवं सर्प भी अंकित है यह प्रतिमा कुषाण काल की है। मूर्ति (47. 3374) श्रीकृष्ण द्वारा वृन्दावन में यमुना तट पर कालिया नाग का दमन प्रदर्शित करती है। कृष्ण नाग के फण पर सवार हैं और नागी अपने असहाय पति को छुड़ाने के लिए बड़ी दयनीय स्थिति में हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही है। हमारे पीछे एक अन्य शिलापट पर (00 डी. 47) भगवान कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को उठाया जाना दिखाया है। आगे दीवार पर मूर्ति सं. ४२--४३. २६८७ में विष्णु के विराट स्वरूप का प्रदर्शन है इसके साथ ही विष्णु की स्वतंत्र मूर्ति प्रदर्शित है इसमें विष्णु का किरीट मुकुट, कठांहरा भी अलंकृत है इसके आगे बलराम जी हाथ में का पत्र बनमाला पहने प्रदर्शित है इनके साथ आधुनिक मूर्ति बलराम का गोवर्धन घाटी कृष्ण के अंकित है इस वीथिका में मध्य में बलराम की मूर्ति सं. सी–१५ प्रदर्शित है इसमें एक कुंडलीय बलराम का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है।

शैव प्रतिमाएं– भगवान् शिव के अनेक रूपों में दर्शन हमें गुप्त कालीन प्रतिमा में मिलते हैं। मानव आकृति के साथ इनका लिंग रूप में प्रतीक पूजन भी प्रचलित था। वीथिका 10 तथा 11 के बीच में शिव लिंग हैं जिसमें दोनों ओर मुंह भी बना हुआ है (14.–15. 462) इसकी जटा, मस्तक पर तीसरा नेत्र, मुण्डमाला अथवा अक्ष माला प्रमुख विशेषताएं हैं। एक अठपहलू खम्भे पर (29.1931) भवगवान् शिव का आयुध त्रिशूल अंकित है और नीचे मस्तक पर त्रिनेत्र से युक्त एक बौनी प्रतिमा के हाथ में छड़ी है। संभव है यह शिव के लकुलीश रूप का चित्रण हो जिसका मथुरा में बहुत जोर था। इस पर उत्कीर्ण अभिलेख से प्रकाश पड़ता है कि उदिताचार्य ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल, गुप्त सम्वत् 61 (380 ई.) में उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक दो शिव लिंगों की स्थापना की। एक रोचक बात यह है कि यह मूर्ति वर्तमान प्रसिद्ध शिव मन्दिर रंगेश्वर के पास से मिली। हमारे दाहिनी ओर एक शिवलिंग में चारों दिशाओं में मुख बने हैं (15.516) और ऊपर का भाग टूटा है। संभवतः यह पंचमुखी शिवलिंग होगा। पाँचों दिशाओं में देखने वाले मुंह क्रमशः तत्पुरुष (पूर्व), अघोर (दक्षिण), वामदेव (पश्चिम) और सद्योजात (उत्तर) हैं। पाँचवाँ मुख जो आकाश की ओर देखता था उसे ईशान कहते थे। यह प्रतिमा संग्रहालय के कुएं से मिली।

पीछे की ओर वीथिका के बीच में शिव और पार्वती अपने वाहन नन्दी के साथ खड़े हैं (30. 2084)। यह दुर्लभ मूर्ति दोनों ओर एक सी ही उत्कीर्ण है। शिव के मस्तक पर जटा भार तथा त्रिनेत्र है और वह उर्ध्व लिंगी हैं। शेर के पंजे से ज्ञात होता है कि वह व्याघ्राजिन अथवा बाघम्बर पहने हैं। पार्वती की प्रतिमा सुकुमार है और हाथ में एक पुष्प है। शिव तथा पार्वती की एक साथ बनी मूर्तियों को उमामहेश्वर कहते हैं। पीछे एक मुखी शिवलिंग की दो मूर्तियाँ हैं। दीवाल के सहारे वीथिका 11 में हमें पीठिका के सहारे भगवान् शिव की एक और दुर्लभ प्रतिमा मिलती है जिसमें वह रुद्राक्ष की माला लिए हैं। सिर पर जटा–जूट है और द्वितीय के चन्द्रमा का भी आभास मिलता है। कुछ लटाएं कंधे से नीचे गिरी हैं। मस्तक के पीछे कमल प्रभामण्डल है और वह ऊर्ध्व लिंगी हैं (71. 23)। इसके पश्चात् हमें एक अन्य प्रसिद्ध प्रतिमा दीखती है जिसमें एक गोल फलक पर स्वामी कार्तिकेय (14.466) अपने शक्ति (शूल) लिए मयूर पर आसीन हैं। उनका अभिषेक कराया जा रहा है। संभव है यह उस घटना का अंकन हो जब तारकासुर को मारने के लिए देवताओं ने उन्हें देव सेनापति नियुक्त कर विजय के लिए अभिषेक किया। स्वामी कार्तिकेय के अन्य नाम हैं स्कंद, कुमार, षडानन, मयूरवाहन आदि। दक्षिण भारत में इन्हें सुबह्मण्य कहते हैं। दीवाल के सहारे पीठिका पर कुछ और मूर्तियाँ हैं। पहल किसी मंदिर का बाह्य अलंकरण खण्ड है (45.3211) जिसमें शिवजी दण्ड लिये व्याख्यान मुद्रा में बैठे हैं। अनुमान है कि उनके दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु हैं। दूसरी मूर्ति में एक शिशु (संभवतः स्कंद) माता की गोद में कुक्कुट से खेल रहा है (35.2571)। किन्तु इस आकृति को हारीति भी बताया है। अंत में ब्रह्मा की दुर्लभ मूर्ति है (48.3433)। जिसमें उन्हें जटा तथा दाढ़ी सहित दिखाया है। ब्रह्मा को चतुर्मुख रूप में प्रदर्शित किया जाता है जो क्रमशः ऋक्, यजुः साम और अथर्व चार वेदों के प्रतीक हैं। चौथा मुंह पीछे की ओर बने होने के कारण ऐसी मूर्तियों में नहीं दिखायी देता।

बगल की दीवार के सहारे लगे प्रदर्शन कक्ष में गुप्त काल के कुछ स्त्री व पुरुष मस्तक हैं जिनसे उस समय का केशविन्यास तथा अलंकारों का प्रयोग ज्ञात होता है। बीच में शिव तथा पार्वती के संयुक्त स्वरूप अर्धनारीश्वर का मस्तक है (13. 362 चित्र 43)। मूर्ति के दाहिनी ओर का मस्तक शिव भाग है जिसमें जटाजूट चन्द्रलेखा आदि हैं और बाईं ओर के पार्वती भाग में कानों में कुण्डल और केशविन्यास पुष्पों से सुसज्जित हैं। इस प्रकार पुरुष व स्त्री के समन्वित रूप का गुप्तकालीन शिल्पी ने बड़ी क्षमता से प्रदर्शन किया है। आध्यात्मिक दृष्टि से अर्धनारीश्वर स्वरूप प्रकृति व पुरुष का संयोग है और कालिदास के शब्दों में ये दोनों वाणी तथा अर्थ की भांति एक दूसरे से अभिन्न हैं।[61]

वीथिका 11 की दूसरी ओर दीवाल के सहारे पीठिका पर हम कुछ गुप्तकालीन प्रतिमाएं देख सकते हैं। प्रथम कलाकृति (38.2797) द्वार शाखा का एक भाग है जिस पर दो ओर क्रमशः मृदंग तथा शंख बजाते यक्ष हैं। इसमें कमल, कीर्तिमुख और पूर्णकुंभ की आकृतियाँ भी बनी हैं। दूसरी कलाकृति (17.1343) द्वार शाखा का ही एक भाग है जिस पर प्रेमासक्त युगल के साथ लता का सुन्दर अंकन है। ऊपर एक ऊंचा भवन है जो अर्धगोलाकार है (वृत्तायत)।

अन्य वास्तु खण्ड (00 आई. 13) में एक शार्दुल आरोही है और दूसरी पटिया में बेल बनी है और डण्डा लिए पार्श्वचर अंतिम कलाकृति संख्या 38. 2793 गुप्त कालीन भवन अलंकरण का सुन्दर उदाहरण है। इसमें दो योद्धा तलवार व ढाल लिए हैं इनके बाल आधुनिक न्यायधीशों के विग से

मिलते हैं। सिंह का मुख व लता–पुष्प आदि भी दर्शनीय हैं।

इसके पश्चात् प्रदर्शन कक्ष में गुप्त काल की छोटी मूर्तियाँ रखी हैं। सर्वप्रथम गणेश हैं (15.758) जो नग्न तुंदिल यक्ष के रूप में अपने बाएं हाथ पर रखे लड्डुओं को सूंड़ से खा रहे हैं। गणेश की यह संभवतः सर्व प्रथम मूर्ति है।

अगली कलाकृति अर्धनारीश्वर का एक और सराहनीय उदाहरण है। (15.772 चित्र 44) पूर्ववत व अन्य विशेषताओं के साथ इसमें मस्तक पर त्रिनेत्र भी है। गले में एकावली बड़ी सुन्दर है। होठों की सुन्दर बनावट, अधखुले नेत्र और शालीनता के कारण मूर्ति में सहज आकर्षण है। विष्णु की प्रतिमा से (00 डी. 28) गुप्त काल के एक नए सूत्र का संकेत मिलता है, जिसके अनुसार कुछ देवमूर्तियों के आयुधों (शस्त्रों) को मानव रूप प्रदान कर दिया जाता था। अतः उन्हें आयुध पुरुष कहते हैं। प्रस्तुत मूर्ति में चक्र के नीचे पुरुष होने से वह चक्र पुरुष और दूसरी आकृति में गदा को स्त्री रूप में दिखाने से उसे गदादेवी कहते हैं।[62] बुद्ध का छोटा मस्तक (00 ए. 38) शिल्पी की अमूल्य कृति है। तत्पश्चात एक शिलापट्ट पर (70.58 चित्र 45) त्रिविक्रम विष्णु के दर्शन होते हैं, जिसके अनुसार उन्होंने बलि से दान माँगने पर सम्पूर्ण संसार को तीन पदों में नाप लिया। अंत में रावणानुग्रह शिव की प्रतिमा (35.2577) है जिसमें रावण कैलाश पर्वत को उठा रखा है और ऊपर शिव तथा पार्वती बैठे हैं। रावण की मुखाकृति से असह्य भार का सहज अनुमान लग जाता है।

तीर्थंकर प्रतिमाएं– छोटी वीथिका संख्या 12 में उत्तर कुषाण तथा गुप्त काल की तीर्थंकर प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं। जैन मूर्तियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। समय के अनुसार रचना शैली वही है जैसी अन्य गुप्तकालीन मूर्तियों की। अतः उनकी पुनरुक्ति की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वराह मिहिर ने बृहत्संहिता में जैन मूर्ति के लक्षण बताए हैं लम्बी लटकती हुई भुजाएं, युवा किन्तु निर्वस्त्र शरीर, वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह और मुख पर प्रशान्त भाव।[63]

दर्शक के लिए यह उपयोगी होगा कि जैन तथा बुद्ध मूर्तियों को भी संक्षेप में स्पष्ट कर दिया जाय। वक्ष पर श्रीवत्स का चिन्ह जिन मूर्तियों का आवश्यक अंग है किन्तु बुद्ध मूर्तियों में नहीं मिलता। बुद्ध मूर्तियों के मस्तक के ऊपर कुछ भाग उठा रहता है इसे उष्णीष बोलते हैं, किन्तु गुप्तकाल तक की जिन मूर्तियों में यह प्राप्त नहीं होता। बुद्ध मूर्तियाँ अभय, भूमि स्पर्श, धर्म चक्र प्रवर्तन, उपदेश या व्याख्यान, ध्यान आदि मुद्राओं में मिलती हैं। किन्तु जिन मूर्तियां या तो दण्डवत कार्योत्सर्ग मुद्रा में खड़ी हैं या ध्यानस्थ भाव में बैठी।

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है आरम्भिक तीर्थकर मूर्तियों को पहचानना कठिन है। आदिनाथ को कंधे पर बाल होने से और पार्श्वनाथ को सर्प फणों से जाना जा सकता है। शेष तीर्थकरों के चिन्ह नहीं मिलते किन्तु गुप्त काल के अनन्तर विभिन्न तीर्थकरों की पहचान के लिये पीठिका पर कुछ चिन्ह दे दिए गए।[64]

इस वीथिका में सामने सर्वतोभद्र प्रतिमा (00 बी. 68) में चारों ओर तीर्थंकर खड़े हैं जिनमें आदिनाथ व पार्श्वनाथ भी हैं। आदिनाथ की तीन मूर्तियाँ (00 बी. 6 चित्र 46,00बी. 7 और 00 बी. 33) गुप्तकला की अच्छी परिचायक हैं। बाईं ओर एक अन्य छोटी आदिनाथ की मूर्ति (12.268) अभिलिखित होने के कारण बहुत महत्वपूर्ण है। समुद्र व सागर द्वारा स्थापित इस मूर्ति में तीर्थंकर का नाम ऋषभ दिया हुआ है अतः बाद में मिली ऋषभनाथ की मूर्तियों को पहचानने के लिये यह बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई[65]।

मध्यकालीन मूर्तियां

वीथिका 13 में मध्यकाल अर्थात् 7वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक की मूतियां प्रदर्शित हैं। गुप्तकाल के पश्चात् मथुरा शैली का निजी ओज तथा प्रभाव शिथिल पड़ गया और मूर्तियों में गुण का ह्रास आरम्भ हो गया। आंतरिक भावनाओं का बाह्य आकृतियों के साथ समन्वय अब नहीं दिखाई देता। मध्यकाल के शिल्पी ने कुछ समय तक तो गुप्तयुगीन विशेषताओं का अनुकरण किया किन्तु उसे अधिक सफलता नहीं मिली और आकृति का सौष्ठव, शालीनता तथा तेज शनैः शनैः लुप्त होता गया66। आभूषण अवश्य बढ़ गये और साथ ही देवता की शक्ति और प्रभाव दिखाने के लिये भुजा तथा आयुधों की संख्या भी बढ़ी। आकृतियाँ अब कुछ तिरछी खड़ी दिखाई पड़ती हैं। प्रणय लीलाओं में लीन स्त्री–पुरुषों का अंकन मंदिर की द्वार शाखा तथा अन्य स्थानों में प्रिय विषय बन गया। मुख्य देवता के साथ परिवार देवता तथा उपदेवताओं का प्रदर्शन भी आवश्यक अंग था। मथुरा में अब लाल पत्थर के स्थान पर प्रायः हलके पीले पत्थर का प्रयोग अधिक हुआ।

तीर्थंकर वीथिका के पश्चात् मध्यकालीन मूर्तियों की वीथिका का आरम्भ दोनों ओर उत्कीर्ण सूर्यप्रतिमा (68. 1 चित्र 47) से होता है। इसमें सूर्य के साथ उनका परिवार भी है। सात घोड़ों के रथ को सारथी अरुण हाँक रहा है। दण्ड और पिंगल नामक दो अनुचर क्रमशः छड़ी और दवात लिये खड़े हैं। सूर्य की भांति वे भी जूते पहने हैं। दो स्त्रियाँ चमर ढल रही है और दो अन्य सूर्य की पत्नियाँ हैं जिन्हें उषा, प्रत्यूषा अथवा छाया, निक्षुभा आदि नामों से पुकारा जाता है। कवच तथा जूते पहने सूर्य को प्रदर्शन करने की यह शैली उत्तर भारत में अधिक प्रचलित थी अतः इस परिधान को उदीच्य वेश कहते हैं। दूसरी ओर भी इसी दृश्य की पुनरावृत्ति है।

इसके पीछे किसी मंदिर की दो द्वार शाखायें (00 आर. 57 और 10. 137) हैं जिसमें कामुक स्त्री–पुरुष दिखाई पड़ते हैं। इनके नीचे पूर्ण कलश लिये नदी देवताओं का अंकन रहता है। यहाँ मकर पर आरुढ़ गंगा है।

सामने मध्य में बड़ी मूर्ति में स्वयं ब्रह्मा (00. डी. 20) कमलासन पर खड़े हैं और यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले दो पात्र स्रक् तथा स्रवा हाथ में है।

विष्णु– दीवाल के सहारे विष्णु तथा उनके परिवार की प्रतिमायें हैं मूर्ति (14.379 चित्र 48) मध्यकाल की श्रेष्ठ कृति है। इसमें पद्मासन में ध्यान लगाये विष्णु बैठे हैं और गदा व शंख दो भुजाओं में हैं। अन्य दो हाथ एक के ऊपर एक ध्यान मुद्रा में हैं। नीचे शंख है। वह कई सुन्दर आभूषण पहने है। ब्रह्मा तथा शिव की आकृतियाँ ऊपर बनी हैं। ध्यान भाव में बनने वाली विष्णु मूर्तियों में ध्यानस्थ बुद्ध मूर्तियों का प्रभाव बताया जाता है[68]। इसलिये इन्हें कभी कभी बुद्धावतार विष्णु कहते हैं।

अन्य मूर्ति (00 डी. 37) भी पहली प्रतिमा का ही विस्तृत स्वरूप है। नीचे भूदेवी हाथ जोड़े हैं और इधर उधर नाग तथा उपासक या दाता हैं।

---

*डा. अग्रवाल शिव लिंग बने होने से इसे पार्वती तथा गरुड होने से वैष्णवी का रूप मानते है

शंख तथा चक्र को पुरुष रूप प्रदान कर दिया गया है और भी अन्य देवी देवता अंकित है। काले पत्थर की बनी एक प्रतिमा (00 डी. 35) में ऊंचा मुकुट पहने विष्णु गदा, चक्र और शंख लिये वरद मुद्रा में हैं। दोनों ओर लक्ष्मी तथा सरस्वती खड़ी हैं। अगली प्रतिमा विष्णु को शेष सर्प पर शयन करता दिखाती है। (12. 257) लक्ष्मी उनके पैर दबाती हैं। मधु व कैटभ नामक दो राक्षस युद्धरत हैं। ऊपर की पट्टी में नवग्रह हैं। अर्थात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। नीचे पीठिका पर नागियों के साथ भूदेवी हैं[69]। अन्य दो भग्न मूर्तियाँ (46. 3222 और 33. 2356) विष्णु तथा लक्ष्मी का प्रदर्शन करती है। दूसरी मूर्ति में गदा बहुत बड़ी है।

अवतार– सामने की दूसरी पंक्ति में विष्णु के विभिन्न अवतार है। प्रथम वराह (87.6) हैं जब उन्होंने समुद्र से पृथ्वी का उद्धार किया तदनन्तर मुख्य मूर्ति विष्णु की सामान्य प्रतिमा (00.डी. 21) है। किन्तु ऊपर दश अवतार बने हैं जिनके इधर उधर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत् कुमार ऋषि हैं। प्रदर्शित अवतार हैं[70] मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और घोड़े पर सवार भावी अवतार कल्कि।

शैव प्रतिमाएं–– वीथिका–14 में दूसरी ओर शिव तथा उनके परिवार की मूर्तियाँ लगी हैं। इसमें मूर्ति सं. 85.167 में उमा महेश्वर आंलिगन मुद्रा में है। सामने की ओर प्रदर्शित गणेश (88. 12) नृत्य मुद्रा में हैं। मूर्ति की दस भुजाओं में कुछ भग्न हैं। फरसा, पाश, लड्डू विशेष रूप से स्पष्ट हैं। उनके केवल एक दाँत होने से उन्हें एक दन्त कहा जाता है। वह सर्प अथवा व्याल यज्ञोपवीत पहने हैं। यह मध्य युग की सुन्दर प्रतिमा है। आगे मूर्ति सं. 88.15 में शिव पार्वती के साथ नन्दी पर बैठे हैं इसके आगे मूर्ति सं. 98.15 में रावणानुग्रह की मूर्ति है इसके आगे मूर्ति सं. 87.8 में शिव पार्वती का विवाह में अग्नि के समक्ष फेरे लेने का दृश्य है ऐसी मूर्तियां कल्याण सुन्दरम के नाम से जानी जाती हैं। मध्य में कुछ अन्य देवाकृतियाँ भी हैं। इस पंक्ति में अंतिम प्रतिमा दुर्गा का दूसरा रूप महिषासुरमर्दिनी की है (68.4) जिसमें उन्होंने महिषासुर का सिर काट दिया है, किन्तु दैत्य मानवरूप धारण कर प्रचण्ड वेग से युद्ध में लीन है। महिष को पीछे से दुर्गा का वाहन शेर विदीर्ण कर रहा है। काल वेग से कुछ नष्ट होने पर भी इस प्रतिमा में युद्ध का बड़ा सजीव अंकन हुआ है।

वीथिका के मध्य में एक द्वार है (80. 23) जिसका सिरदल सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, और केतु नवग्रहों से दंशावतार से उत्तीर्ण है। इनमे सूर्य के हाथ में कमल है। राहु का आधा शरीर है और उसके हाथ तर्पण मुद्रा में है। केतु सर्पाकार है। अन्य ग्रहों की आकृतियां समान है। मन्दिर या भवन को स्थायी व प्रदान करने की दृष्टि से मध्यकाल में नवग्रहों का अंकन होने लगा। अब भी सुख समृद्धि व शान्ति के निमित्त धार्मिक कार्यों में नवग्रह पूजन प्रचलित है। द्वार शाखाओं पर पूर्ण घट लिए नदी देवता बने हुए हैं। इस द्वार में छोटा मन्दिर है। (12.247) इस पर अनेक अलंकरण व देवाकृतियाँ बनी हैं। इसके अन्दर वामनाविष्णु की मूर्ति है (78.1) मंदिर के पीछे शेरगढ़ से प्राप्त विशाल भंडार पात्र है (54. 3719) प्रदर्शन कक्षों में कुछ छोटी मूर्तियाँ हैं। प्रथम में शक्ति सहित गणेश (15.1112) की दुर्लभ आकृति है और दूसरे में सलेटी पत्थर की सूर्य की मूर्ति (16.1256) उदीच्य वेष में दण्ड व पिंगल के साथ हैं। डा. अग्रवाल शैलीगत विशेषताओं से इसे चौथी शताब्दी की मानते हैं। किन्तु मुझे यह गुप्तोत्तर काल (ल. सातवीं शती ई.) की लगती है।

हमारे दाहिनी ओर पीठिकाओं पर अनेक प्रकार की मूर्तियां प्रदर्शित हैं। सर्वप्रथम एक स्त्री मूर्ति की सिर तथा पैर विहीन आकृति है (49.

3458) जिसके अलंकार, शरीर रचना तथा अल्प त्रिभंग मुद्रा से अनुमान लगता है कि मध्यकाल में भी कभी–कभी कला में प्राण फूंक दिए जाते थे। आगे एक चौमुखी अथवा सर्वतोभद्र प्रतिमा (टी.ए. एन.) है जिसमें ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा सूर्य की आकृतियां विभिन्न दिशाओं में है। इससे सर्व धर्म समन्वय की प्रवृत्ति का आभास मिलता है। सर्वतोभद्र प्रतिमाओं का निर्माण प्राचीन जैन मूर्तियों का प्रभाव है।

इसके पश्चात् कुछ जैन मूर्तियां प्रदर्शित हैं। ध्यान आसन में बैठी यह तीर्थंकर आकृति (00 बी. 20) मध्यकालीन कला का अच्छा उदाहरण है। श्रीवत्स चिन्ह को इसमें उभार कर बनाया गया है और स्तन्य भागों को चक्र के समान। यह भी मध्य युग की विशेषता है। इस युग में विभिन्न तीर्थंकरों को पहचानने के लिये प्रायः कोई न कोई चिन्ह बना दिया जाता था। साथ ही अनुचर आकृतियों, शासन देवता, यक्षिणियों से भी इस प्रकार की पहचान संभव है। इस मूर्ति की पीठिका पर बने घट से यह पता लगता है कि यह उन्नीसवें तीर्थकर मल्लिनाथ की प्रतिमा थी। मल्लिनाथ को कभी कभी स्त्री के रूप में भी दिखाते हैं। अगली चतुर्मुखी (सर्वतोभद्रिका) मूर्ति में (00 बी. 65) चार भिन्न तीर्थंकर बने हैं। कंधे पर बाल होने के कारण एक आदिनाथ हैं, गोमेघ यक्ष तथा अम्बिका के साथ एक नेमिनाथ हैं, पद्मप्रभ को आसन पर बने कमल से पहचाना जा सकता है और पार्श्वनाथ की मुख्य पहचान है सिर के ऊपर सर्प फणों की छतरी।

अगली शिशु सेवित स्त्री मूर्ति (00 डी. 7) नेमिनाथ की यक्षी अम्बिका की है जो ब्राह्मण धर्म की पार्वती के अधिक निकट हैं। इसके साथ ही गणेश, विष्णु, बलराम और कुबेर आदि देवता भी दीखते है। इस पीठिका पर दूसरी ओर प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की यक्षी चक्रेश्वरी है जो विष्णु पत्नी वैष्णवी का परिवर्तित स्वरूप है (00 डी. 6 चित्र 49) नीचे उनका वाहन गरुड़ है। दसों भुजाओं में देवी चक्र लिये थीं इसीलिये इसे चक्रेश्वरी कहते हैं। इस प्रकार हमें जैन मूर्तियों में अनेक हिन्दू देवताओं का समावेश दीखता है[71]। वीथिका सं. 14 में लपटों के प्रभामण्डल से युक्त छोटी दाढ़ी के साथ अग्निदेव की मूर्ति भी सुन्दर है (00 डी. 24) इसमें वाहन अज तथा पात्र को भी पुरुषाकृति बना दिया है। ये दोनों अग्नि के इधर उधर खड़े हैं। प्रतिमा शास्त्र की दृष्टि से यह बड़ा दुर्लभ लक्षण हैं और द्वार के पास इस पीठिका पर अंतिम मूर्ति है राहु की जो नवग्रहों में से एक माना जाता है (38' 2836) इसे तर्पण मुद्रा में प्रदर्शित किया जाता है। कला की दृष्टि से यह उत्तम है। दीवार के दूसरी ओर विभिन्न मातृदेवियों की मूर्तियां लगी हैं। सर्वप्रथम अम्बिका (88.17) गोद में शिशु लिए प्रदर्शित हैं और इसके पश्चात् गणेश तथा वीणाधर शिव के बीच में सप्तमातृकाओं (15' 552) की आकृतियां बनी हैं इन्हें वाहनों तथा आयुधों से पहचाना जा सकता है। ब्रह्माणी स्रवा लिये हंस पर आरूढ़ हैं। माहेश्वरी के पास त्रिशूल है और उनका वाहन है बैल। कौमारी शक्ति लिये मोर पर बैठी हैं। वैष्णवी हाथ में गदा के साथ गरुड़ पर हैं। वाराही की मुखाकृति शूकर के समान हैं और उनके नीचे संभवतः भैंसा है। इसी प्रकार इंद्राणी बज्र लिये ऐरावत हाथी पर सवार हैं और अंत में प्रेत पर आरुढ़ मुण्डमाला पहने चामुण्डा हैं। सभी देवियों की गोद में एक बच्चा है। अंतिम पटिया पर (40* 2874) दाएं से बाएं तीन मातृदेवियां हैं, वाराही, वैष्णवी और कौमारी[72]।

सूर्य प्रतिमाएं – इस वीथिका में सूर्य की रथा रूढ़ सूर्य (८८.१८ चित्र .५०) सात घोड़ों के रथ पर उत्कीर्ण एवं दूसरी स्थानक दुर्लभ प्रतिमा (88.19 चित्र–५१) प्रदर्शित है जिसके दोनों तरफ दशावतारों का अंकन है। मध्य में सूर्य की स्थानक

प्रतिमा (88.9 चित्र–५३) प्रदर्शित हैं तथा इसके अतिरिक्त प्रतिहार कालीन गणेश की दश भुजी प्रतिमा (८८.१२ चित्र ५२) प्रदर्शित है। उपर्युक्त सभी प्रतिमाएं मध्यकाल की है।

यदि दर्शक के पास समय हो तो वह वीथिका 16 से 19 बरामदे में प्रदर्शित कुछ अन्य मूर्तियों को भी देख सकता है। इनके अतिरिक्त कांस्य वीथिका में धातु की मूर्तियां भी प्रदर्शित है जो प्रथमशती से लेकर 19 वीं शती की हैं इनमे सौंख से प्राप्त कार्तिकेय, कृष्ण लीलाओं से संबंधित मूर्तिया, विष्णु के विविध स्वरूप शिव परिवार, बौद्ध जैन कलाकृतियां, उपासक उपासिकाएं, कलात्मक खेलखिलौने आदि विभिन्न प्रदर्शन कक्षों में काल क्रमानुसार प्रदर्शित किये गये हैं।

❑❑

सन्दर्भ

1. रामायण, उत्तर काण्ड, सर्ग 61–69.
2. Mathura District Gazetteer, 1968 p. I.
3. दिव्यावदानम् में पांशु प्रदानावदानम् पृ. 217 मिथिला विद्यापीठ से 1959 में प्रकाशित।
4. मथुरा, प्रो. कृष्ण दत्त बाजपेयी, अ. 4.
5. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 823–26.
6. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, श्रीप्रभु दयाल मीतल, पृ. 47.
7. The Age of Imperial Unity, P.I.
8. अष्टाध्यायी 4–1–14; 4–2–82 और 6–2–34.
9. महाभाष्य 5–3–57.
10. सन्दर्भ 4. पृ. 18
11. वही पृ. 1.
12. मथुरा कला, डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ. 10.
13. The Struggle For Empire, p. 499.
14. The Delhi Sultanate, pp. 146-147.
15. The Jain Stupa, etc. by Smith (A.S.I. XX), p. 13.
16. सन्दर्भ 12, पृ. 34.
17. मथुरा की मूर्तिकला, डा. नी. पु. जोशी, पृ. 57–58.
18. Catalogue of the Archaeological Museum at Mathura, by Dr. J.Ph. Vogel, 1910, p. 6 and Growse, Mathura, 2nd edition, P. 109.
19. Bulletin of Museums & Archaeology in U.P. Nos. 1 to 5.
20. IPEK, Early Indian Terracottas, by Dr. A.K. Coomaraswami.

    Mathura Terracottas, by V.S. Agrawala in the Journal of the U.P. Historical Society, Vol. IX, July, 1939. pp. 6- 38.
21. Indian Sculptures, by Sivaramamurti, p. 2, Indian Art, by Dr. Agrawala, p. 112.
22. सन्दर्भ 12, पृ. 34।
23. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 743–52.
24. सन्दर्भ 18, पृ. 162.
25. श्री मदन मोहन नागर कृत पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की परिचय पुस्तक 1947, पृ. 5.
26. लेखक के विस्तृत विचारों के लिये देखें सन्दर्भ 19, सं. 5, पी.पी. 16–27.
27. History of Indian and Indonesian Art, by Dr. A.K. Coomaraswami, p. 178.
28. Indian Art, by Dr. V.S. Agrawala, pp. 231-33.

29. सन्दर्भ 17, ग्रन्थ के आरम्भ में.
30. सन्दर्भ 6.
31. The Seythian Period, by Dr. Lohuizen, Ch. 3 and सन्दर्भ 26.
32. यह डा. हरबर्ट हर्टिल का सुझाव है।
33. The Art an I Architecture of India by Dr. Benzamin Rowland, p. 100'
34. Hand Book of the Sculptures in the Curzon Museum of Archaeology, Mathura, by V.S. Agrawala.
35. V.S. Agrawala, Indian Art.
36. D. N.P. Joshi and R.C. Sharma, Gandhara Sculptures in the State Museum, Lucknow, pp. 28-36.
37. सन्दर्भ 28, पृष्ठ 247–48.
38. बुद्ध चरित 9/10.
39. सन्दर्भ, 34, पृ. 12.
40. Dynastic Art of the Kushans, pp. 28-29.
41. Ibid. p. 144
42. सन्दर्भ 34, पृ. 14.
43. वही पृ. 36.
44. Studies in Indian Art, p. 166 (Dr. Agrawala).
45. सन्दर्भ 19 No. 4, Sri R.C. Agrawals's Article, pp. 4-5 तथा अंक 3 में डा. जोशी का लेख पृ. 38–40.
46. डा. अग्रवाल का कैटलाग 1950, पृ. 85.
47. सन्दर्भ 17 परिशिष्ट 2, पृ. 2–6
48. डा. रमानाथ मिश्र इसे यक्ष बताते हैं.
49. सन्दर्भ 19 अंक 2 में डा. जोशी का लेख "प्रारम्भिक विष्णु मूर्तियों का अध्ययन".
50. सन्दर्भ 27, पृ. 64 और सन्दर्भ 28 पृ. 237.
51. सन्दर्भ 18, पृ. 143.
52. सन्दर्भ 34, पृ. 41.
53. ऋष्य शृंग की कथा रामायण (बालकाँड, सर्ग 10), महाभारत (वनपर्व अ. 110–113), क्षेमेन्द्र की बोधिसत्वावदान कल्पलता आदि में थोड़े बहुत रूपान्तर से मिलती है। सन्दर्भ 44 का पृ. 160–61 उल्लेखनीय है।
54. सन्दर्भ 44, पृ. 155–59.
55. वही पृ. 183.
56. वही पृ. 199–202.
57. कालिदास ने प्रभामंडल के लिये "पद्मातपत्र–छाया मंडल" (रघु. 4.5) 'स्फुटत् प्रभामंडल' (कु. सं. 7.44) आदि शब्दों का प्रयोग किया है।
58. डा. हर्टिल इसे दुर्गा का मस्तक मानते हैं।
59. कुमार संभव 7.44।
60. Dr. Agrawala's Catalogue of the Brahmanical Sculptures in the Mathura, Museum J. U.P. H.S. 1949. pp. 43-45.
61. रघुवंश 1.1.
62. कालिदास ने विष्णु के आयुध पुरुषों द्वारा कौसल्या आदि रानियों के गर्भ की रक्षा का उल्लेख किया है (रघु. 10.60).
63. वृ. सं. 58. 45.
64. सन्दर्भ 7, पृ. 427.
65. Dr. Agrawala's Catalogue of Jaina Tirthankars, etc. in J.U. P. H.S., 1950.

66. Dr. St. Kramrisch, Indian Seulpture, p. 77.

67. सन्दर्भ 60, पृ. 156.

68. वही पृ. 120.

69. डा. अग्रवाल भूदेवी को समुद्र कन्या बताते हैं। वही पृ.120.

70. इस कृष्ण को वह बलराम मानते है। वही पृ. 114.

71. Jaina Iconography, by B.C. Bhattacharya, pp. 120-21

72. सन्दर्भ सं. 60, पृ. 163.

▢▢

चित्र–सूची

25.	कटरा बोधिसत्व	(00-A.1)
26.	कनिष्क	(12-213)
27.	सूर्य	(12-269)
28.	केश प्रसाधन	(12.186)
29.	अशोक वृक्ष	(00.F-2)
30.	कार्तिकेय	(42-2949)
31.	चतुर्व्यूह विष्णु	(14-392-14.395)
32.	अलंकृत छत्र	(72-5)
33.	वस्त्र परिधान यक्षी	(00-J-4)
34.	पात्र हस्ता स्त्री	(11.151)
35.	ऋषि श्रृंग	(00-J-7)
36.	प्रसाधिका	(14.369)
37.	स्नाता	(18.1509)
38.	भगवान बुद्ध	(00-A-5)
39.	बुद्ध मस्तक	(49-3510)
40.	देवी मस्तक	(12-261)
41.	शाल भंजिका	(54.3810)
42.	आभूषण पहने विष्णु	(50-3532)
43.	अर्धनारीश्वर मस्तक	(13-362)
44.	अर्धनारीश्वर	(15-772)
45.	त्रिविक्रम विष्णु	(70-58)
46.	आदिनाथ	(00-B-6)
47.	परिवार सहित सूर्य	(68-1)
48.	ध्यानस्त विष्णु	(14-379)
49.	चक्रेश्वरी	(00-D-6)
50.	रथारुढ़ सूर्य	(88-18)
51.	दशवतार युक्त सूर्य	(88-19)
52.	दशभुजी नृत्य गणेश	(88-12)
53.	सूर्य	(88-9)

सोंख के अवशेष
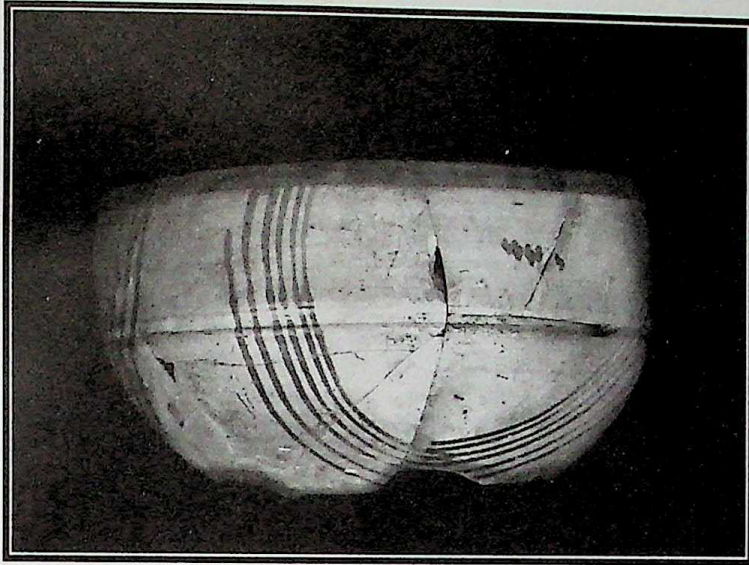
चित्र–1 मृत पात्र

चित्र–2 कुवेर एवं हारीति (501.173), काँस्य प्रतिमा

चित्र–3 मात्रदेवी अति प्राचीन
(27–28.1646)

चित्र–4 मात्र देवी मौर्य काल
(66.2)

शुंग कालीन मृण् मूर्तियां

चित्र–5 विदेशी युवक (35–2556)

चित्र–7 प्रेमी युगल (61.5227)
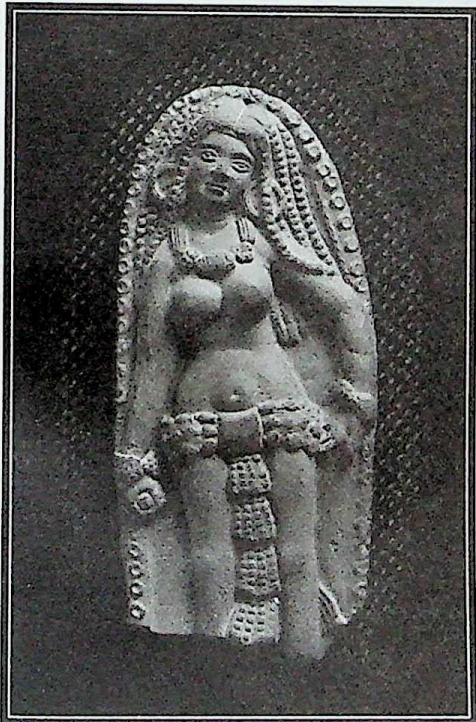
चित्र–6 वेंणियाँ सजाए सुन्दरी (59.4748)

चित्र–8 कलात्मक आभूषण युक्त स्त्री (19.1592)

गुप्तकालीन मृण् मूर्तियां

चित्र–9 कार्तिकेय (36.2794)

चित्र–10 स्त्री कलह (61.5217)

चित्र–11 राज महिषी और विदूषक (38.39–2795)

प्रस्तर मूर्तियां
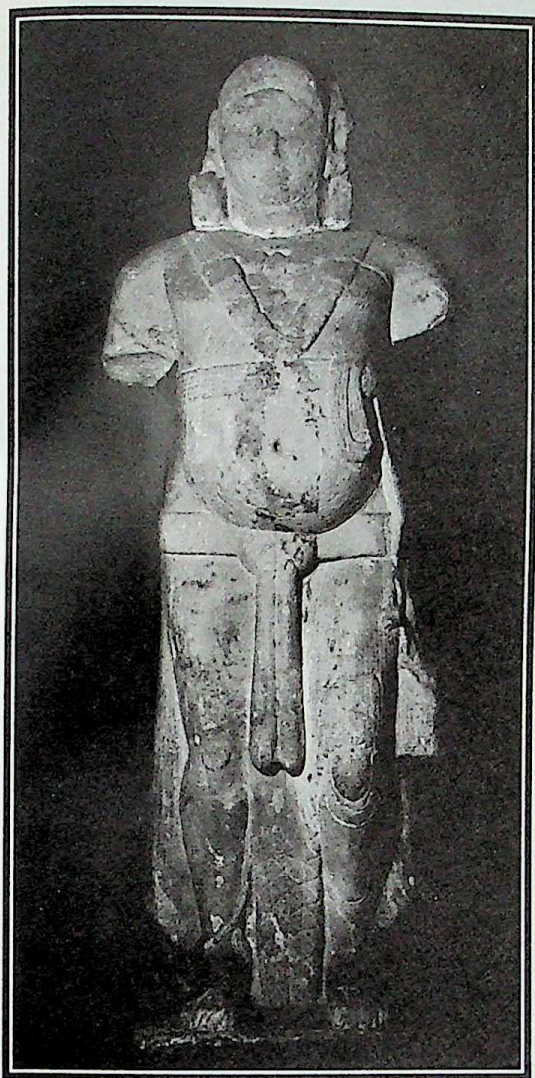
चित्र–12 परखम यक्ष (00.C-1)

चित्र–13 नटी (00.J-2) शुंग काल

चित्र–14 दुखोपादान जातक (15.586) शुंग काल

चित्र–15 राजपुरुष (00.E-7) उत्तर शुंग काल

चित्र–16 जैन आयाग पट्ट (00-Q-2)
प्रथम शती ई. का पूर्व भाग

चित्र–17 बुद्ध मस्तक (E-27)
प्रथम शती ई.
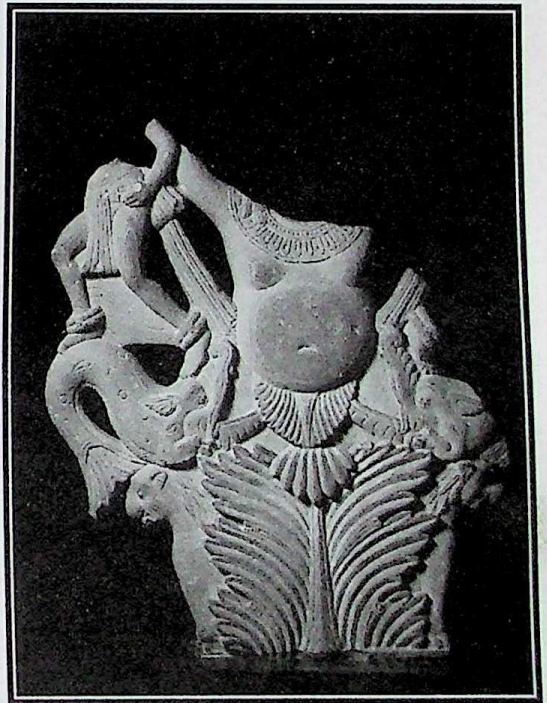
चित्र–18 सिंह ताल यक्ष (72–2)
प्रथम शती ई.
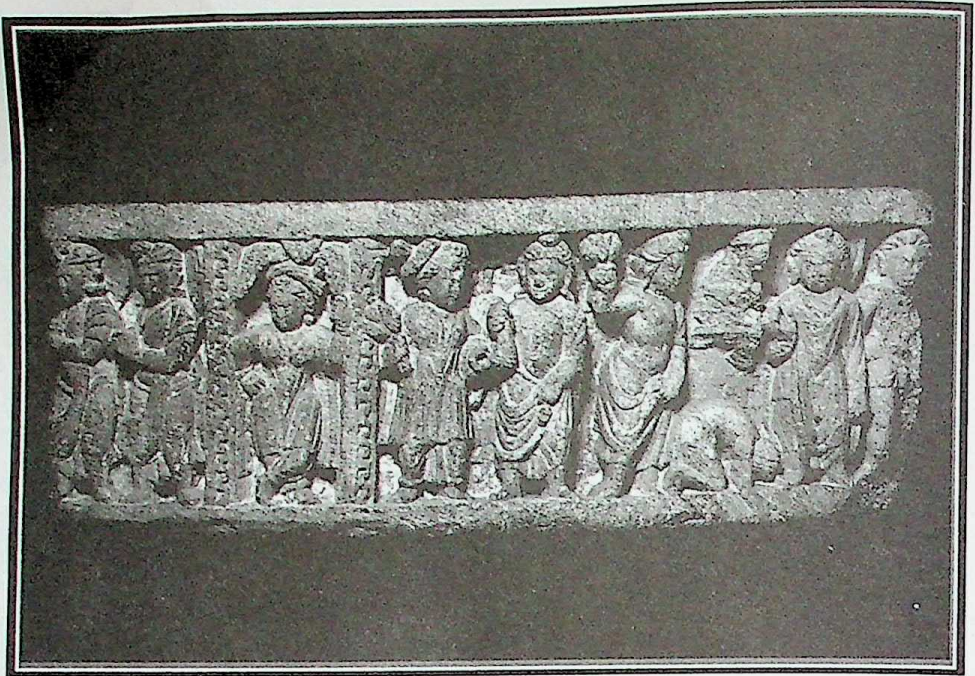
चित्र–20 दीपंकर जातक (81–1543) गांधार कला

चित्र–19 कम्बोजिका अग्रभाग (00-F-42)
गांधार कला
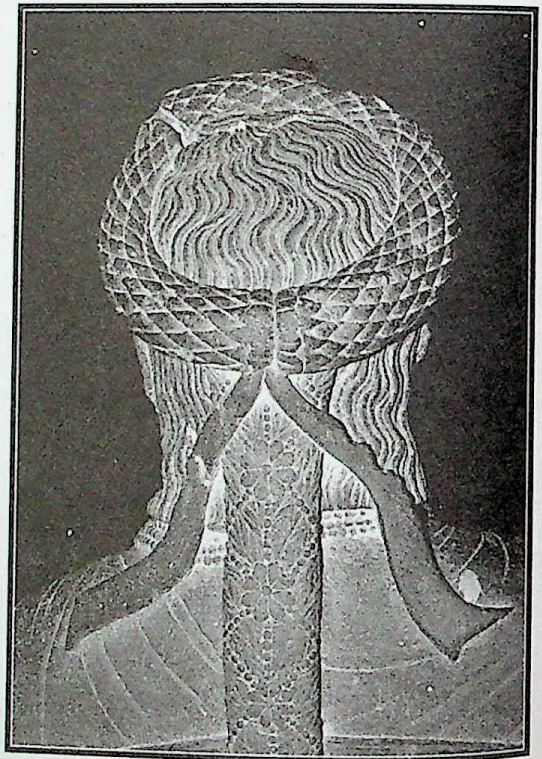
कम्बोजिका पृष्ठ भाग

चित्र–21 बुद्ध का कठोर तप (18–1550) गांधार कला

कुषाण कालीन मूर्तियां

चित्र– 22 आसवपायी कुबेर (00-C-2)

चित्र–23 यक्ष (कुवेर) (00-C-3)

चित्र–24 बुद्ध अभय मुद्रा में (71.105)

चित्र– 25 कट्रा बोधिसत्व (00.A-1)
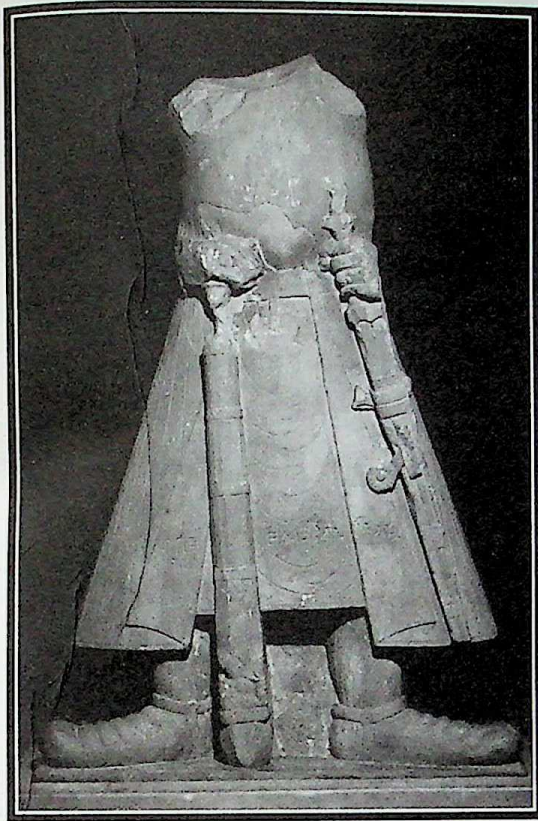
चित्र–26 कनिष्क (12.213)

चित्र– 27 सूर्य (12.269)

चित्र– 28 केश प्रसाधन (12.186)

चित्र–29 अशोक वृक्ष (00-F-2)

चित्र–30 कार्तिकेय (42–2949)

चित्र–31 चतुर्व्यूह विष्णु
(14392 से 14–395)

चित्र – 32 अलंकृत छत्र (72–5)

चित्र–34 पात्र हस्ता स्त्री (11.151)

चित्र–33 वस्त्र परिधान यक्षी (J-4)
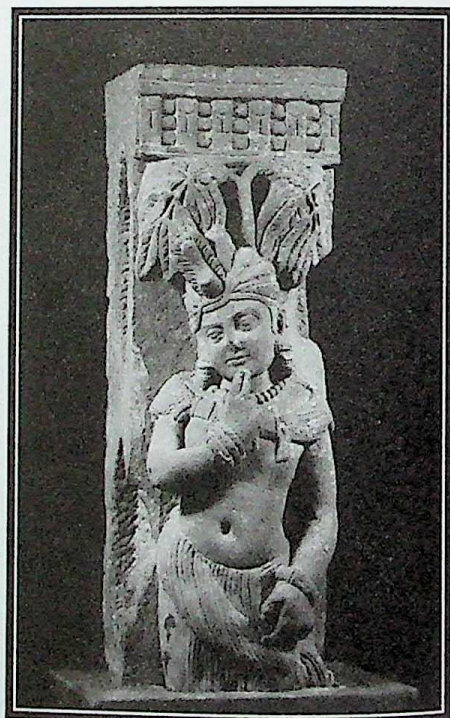
चित्र–35 ऋषि श्रृंग (00.J-7)
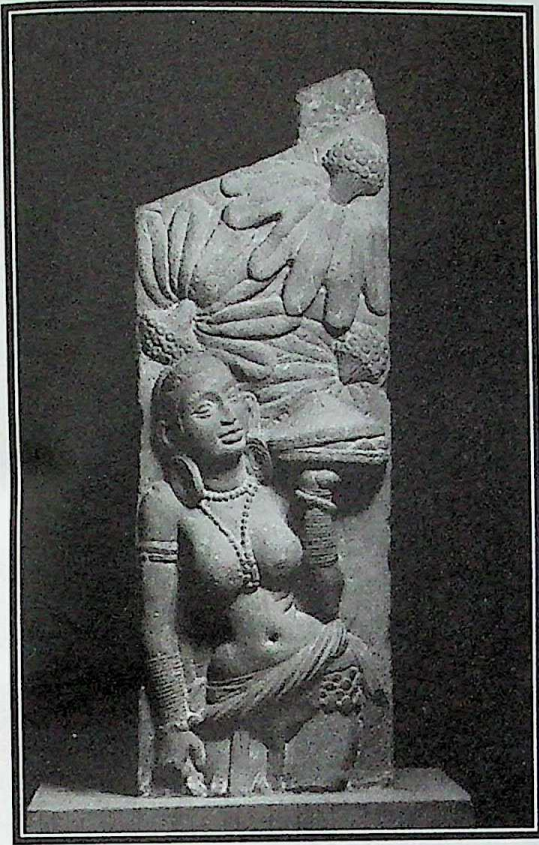
चित्र–36 प्रसाधिका (14.369)

चित्र–37 स्नाता (18.1509)

गुप्तकालीन मूर्तियां

चित्र–38 भगवान बुद्ध (00-A-5)
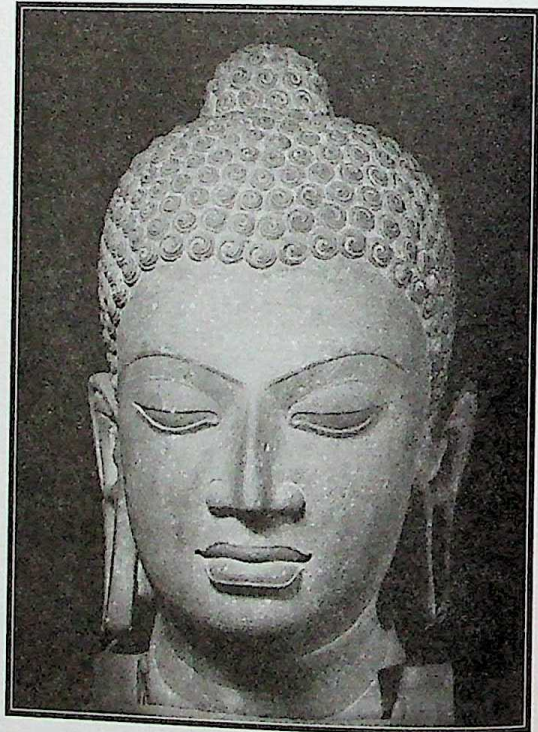
चित्र–39 बुद्ध मस्तक (49.3510)

चित्र–40 देवी मस्तक (12–261)
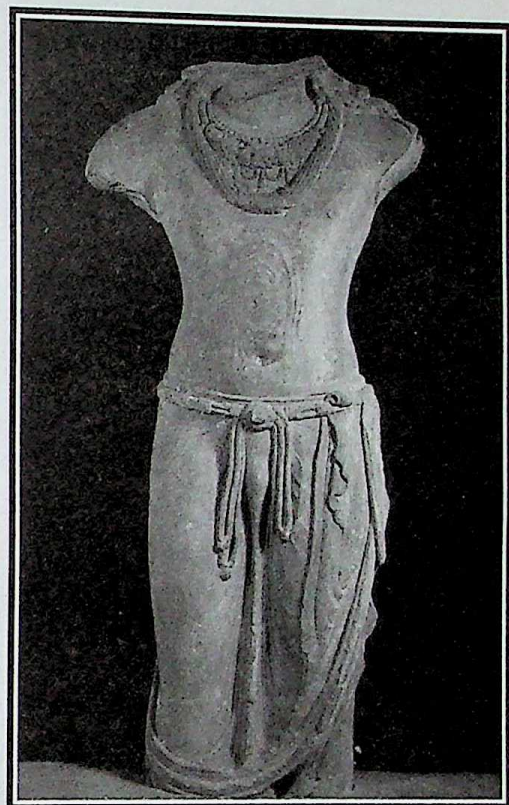
चित्र–42 आभूषण पहने विष्णु (50–3532)

चित्र–41 शाल मंजिका (54–3810)

अर्धनारीश्वर

चित्र–43 अर्धनारीश्वर मस्तक (13–362)

चित्र– 44 अर्धनारीश्वर (15–772)

चित्र–45 त्रिविक्रम विष्णु (70–58)

चित्र–46 आदिनाथ (00-B-6)
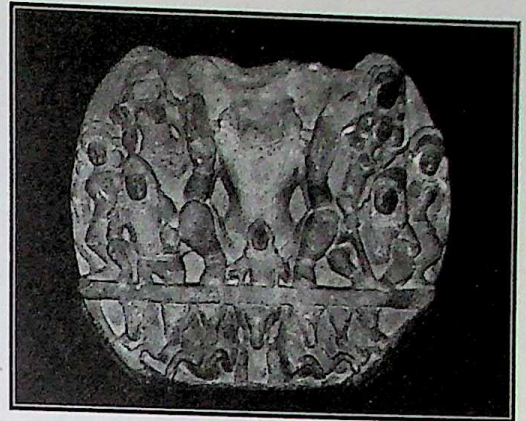
चित्र–47 परिवार सहित सूर्य (68–1)
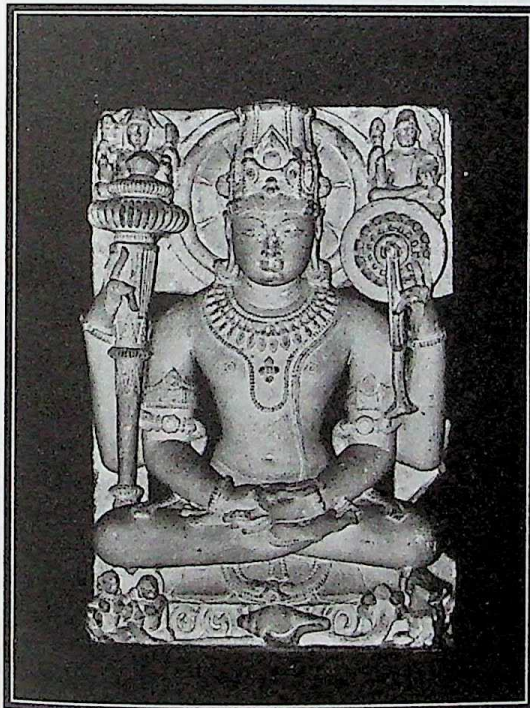
चित्र– 48 ध्यानस्त विष्णु (14–379)
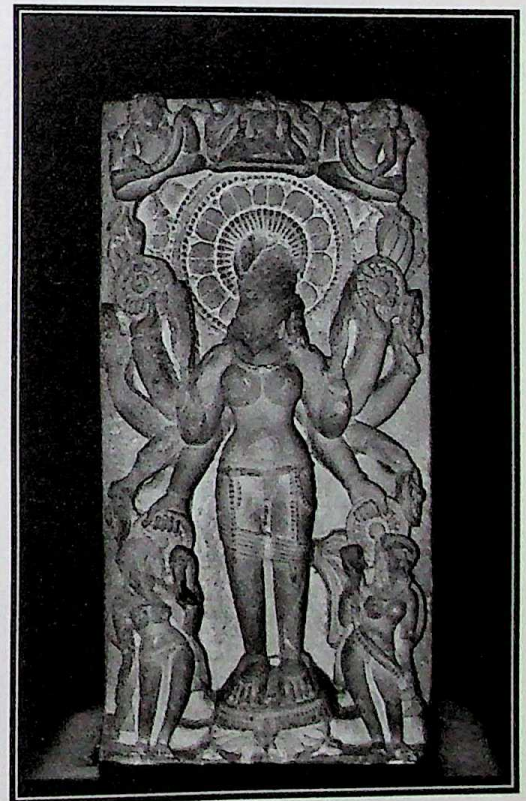
चित्र– 49 चक्रेश्वरी (00-D-6)

चित्र– 50 रथारूढ़ सूर्य (88–18)
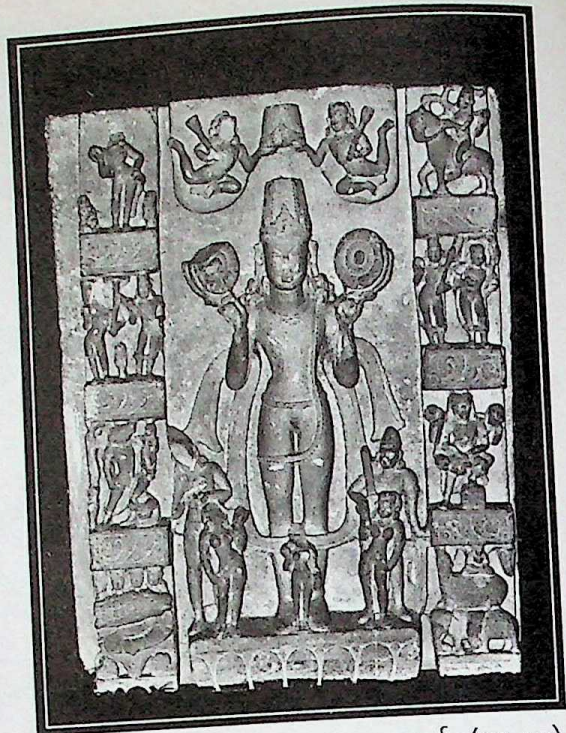
चित्र– 51 दशावतार युक्त सूर्य (88.19)

चित्र– 52 दशभुजी नृत्यगणेश (88.12)

चित्र–53 सूर्य (88.9)

संग्रहालय

प्राचीन
एवं
नवीन